ಕರ್ನಾಟಕ ರಾಜ್ಯ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ
ಮುಕ್ತಗಂಗೋತ್ರಿ, ಮೈಸೂರು-೫೭೦ ೦೦೬

KARNATAKA STATE OPEN UNIVERSITY
Mukthagangotri, Mysore - 570 006.

मध्यकालीन हिन्दी काव्य

M.A. FINAL HINDI

COURSE / PAPER – II

BLOCK – 1

ಉನ್ನತ ಶಿಕ್ಷಣಕ್ಕಾಗಿ ಇರುವ ಅವಕಾಶಗಳನ್ನು ಹೆಚ್ಚಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮತ್ತು ಶಿಕ್ಷಣವನ್ನು ಪ್ರಜಾತಂತ್ರೀಕರಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ ವ್ಯವಸ್ಥೆಯನ್ನು ಆರಂಭಿಸಲಾಗಿದೆ.

ರಾಷ್ಟ್ರೀಯ ಶಿಕ್ಷಣ ನೀತಿ 1986

The Open University System has been initiated in order to augment opportunities for higher education and as instrument of democrating education.

National Educational Policy 1986

ವಿಶ್ವ ಮಾನವ ಸಂದೇಶ

ಪ್ರತಿಯೊಂದು ಮಗುವು ಹುಟ್ಟುತ್ತಲೇ – ವಿಶ್ವಮಾನವ, ಬೆಳೆಯುತ್ತಾ ನಾವು ಅದನ್ನು 'ಅಲ್ಪ ಮಾನವ'ನನ್ನಾಗಿ ಮಾಡುತ್ತೇವೆ. ಮತ್ತೆ ಅದನ್ನು 'ವಿಶ್ವಮಾನವ'ನನ್ನಾಗಿ ಮಾಡುವುದೇ ವಿದ್ಯೆಯ ಕರ್ತವ್ಯವಾಗಬೇಕು.

ಮನುಜ ಮತ, ವಿಶ್ವ ಪಥ, ಸರ್ವೋದಯ, ಸಮನ್ವಯ, ಪೂರ್ಣದೃಷ್ಟಿ ಈ ಪಂಚಮಂತ್ರ ಇನ್ನು ಮುಂದಿನ ದೃಷ್ಟಿಯಾಗಬೇಕಾಗಿದೆ. ಅಂದರೆ, ನಮಗೆ ಇನ್ನು ಬೇಕಾದುದು ಆ ಮತ ಈ ಮತ ಅಲ್ಲ; ಮನುಜ ಮತ. ಆ ಪಥ ಈ ಪಥ ಅಲ್ಲ ; ವಿಶ್ವ ಪಥ. ಆ ಒಬ್ಬರ ಉದಯ ಮಾತ್ರವಲ್ಲ; ಸರ್ವರ ಸರ್ವಸ್ತರದ ಉದಯ. ಪರಸ್ಪರ ವಿಮುಖವಾಗಿ ಸಿಡಿದು ಹೋಗುವುದಲ್ಲ; ಸಮನ್ವಯಗೊಳ್ಳುವುದು. ಸಂಕುಚಿತ ಮತದ ಆಂಶಿಕ ದೃಷ್ಟಿ ಅಲ್ಲ; ಭೌತಿಕ ಪಾರಮಾರ್ಥಿಕ ಎಂಬ ಭಿನ್ನದೃಷ್ಟಿ ಅಲ್ಲ; ಎಲ್ಲವನ್ನು ಭಗವದ್ ದೃಷ್ಟಿಯಿಂದ ಕಾಣುವ ಪೂರ್ಣದೃಷ್ಟಿ.

ಕುವೆಂಪು

Gospel of Universal Man

Every Child, at birth, is the universal man. But, as it grows, we trun it into "a petty man". It should be the function of education to turn it again into the enlightened "universal man".

The Religion of Humanity, the Universal Path, the Welfare of All, Reconciliation, the Integral Vision - these ***five mantras*** should become View of the Future. In other words, what we want henceforth is not this religion or that religion, but the Religion of Humanity; not this path or that path, but the Universal Path; not the well-being of this individual or that individual, but the Welfare of All; not turning away and breaking off from one another, but reconciling and uniting in concord and harmony; and above all, not the partial view of a narrow creed, not the dual outlook of the material and the spiritual, but the Integral Vision of seeing all things with the eye of the Divine.

Kuvempu

द्वितीय एम.ए. - कोर्स दो

Course - II, Paper - II

1

मध्यकालीन हिन्दी काव्य

'तुलसीदास'

Unit No. 1 to 4		Page No.
अनुक्रमणिका		

इकाई	01	तुलसीदास की जीवनी, व्यक्तित्व एवं कृतित्व	1 - 34
इकाई	02	तुलसीदास की समन्वय भावना	35 - 60
इकाई	03	रामचरितमानस में चरित्र-चित्रण एवं शील-निरूपण	61 - 100
इकाई	04	तुलसीदास की भक्ति भावना	101 - 128

VOP - 9 - 64

पाठ्यक्रम अभिकल्प तथा संपादकीय समिति

प्रो. एम.जी. कृष्णन्
उप–कुलपति तथा अध्यक्ष
कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय
मैसूर–६

प्रो. एस.एन. विक्रम राज अरर्स
डीन (शैक्षाणिक) - संयोजक
क.रा.मु.वि. विद्यालय
मैसूर - 6

बी.जी.चन्द्रलेखा
संयोजिका
पुर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
क.रा.मु.वि. विद्यानिलय
मैसूर – ६.

पाठ्यक्रम की लेखिका तथा संपादिका

डॉ.मिथाली भट्टाचार्यजी
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
बेंगलूर विश्वविद्यालय
बेंगलूर - 54.

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, मैसूर, शैक्षणिक अनुभाग द्वारा निर्मित । सभी अधिकार सुरक्षित । कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति प्राप्त किए बिना, इस कार्य के किसी भी अंश को किसी भी रूप में अनुलिपित या किसी अन्य माध्यम द्वारा प्रतिकृति नहीं किया जाएगा ।

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम पर अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मानस गंगोत्री, मैसूर - 6 से प्राप्त की जा सकती है ।

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से रजिस्ट्रार
द्वारा मुद्रित व प्रकाशित।

ब्लाक परिचय

प्रिय विद्यार्थी,

कोर्स - एक में आपने प्राचीन हिन्दी काव्य के बारे में अध्ययन किया और सविस्तार रूप से जानकारी भी प्राप्त कर लीं ।

अब आप **कोर्स - दो** के अंतर्गत तुलसीदास एवं सूरदास के व्यक्तित्व और कृतित्व और उनसे विरचित काव्य, बाल्य-जीवन इत्यादि के बारे में जानकारी प्राप्त करने वाले हैं ।

ब्लाक - एक में आप तुलसीदास की जीवनी, व्यक्तित्व एवं कृतित्व, तुलसीदास की समन्वय भावना, रामचरितमानस में चरित्र-चित्रण एवं शील-निरूपण, तुलसीदास की भक्ति भावना के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे ।

शुभकामनाओं के साथ,

डॉ. कांबले अशोक
अध्यक्ष,
हिन्दी अध्ययन एंव अनुसंधान विभाग
क.रा.मु.वि. विद्यालय,
मैसूर – ६.

इकाई एक : तुलसीदास की जीवनी, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

इकाई की रूपरेखा

1.0. प्रस्तावना

1.1. उद्देश्य

1.2. गोस्वामीजी का जीवन-वृत्त

1.3. गोस्वामीजी के जीवन से संबंधित उपलब्ध सामग्री

1.3.1. अंतः साक्ष्य

1.3.2. बहिर्साक्ष्य

1.4. समकालीन और परवर्ती कवियों के ग्रंथ

1.5. विभिन्न स्थानों से संबंधित सामग्री

1.5.1. काशी की सामग्री

1.5.2. अयोध्या की सामग्री

1.5.3. राजापुर की सामग्री

1.5.4. सोरो की सामग्री

1.6. जनश्रुतियाँ एवं किंवदन्तियाँ

1.7. जन्मकाल

1.8. जन्मस्थान

1.9. नाम

1.10. उपाधि

1.11. माता पिता और परिवार

1.12. अवस्था

1.13. बाल्यावस्था

1.14. युवावस्था

1.15. प्रौढ़ावस्था

1.16. वृद्धावस्था

1.17. जाति, कुल और गोत्र

1.18. गुरू

1.19. प्रकृति और स्वभाव

1.20. वैराग्य

1.21. पर्यटन तथा तीर्थयात्रा

1.22. जीवन यात्रा का अंत एवं देहावसान

1.23. काव्य कृतियाँ

1.24. नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट

1.25. शिवसिंह सेंगर कृत शिवसिंह सरोज

1.26. सर जार्ज ग्रियर्सन

1.27. मिश्रबंधु 12 ग्रंथों को प्रामाणिक मानते हैं

1.28. आचार्य रामचंद्र शुक्ल

1.28.1. बड़े ग्रंथ

1.28.2. छोटे ग्रंथ

1.29. डॉ. माताप्रसाद गुप्त

1.30. डॉ. भागीरथ प्रसाद दीक्षित

1.31. अवस्था तथा विकासक्रम की दृष्टि से रचनाओं का वर्गीकरण

1.31.1. प्रारंभिक अवस्था की रचनाएँ

1.31.2. मध्यकालीन अवस्था की रचनाएँ

1.31.3. उत्तरकालीन रचनाएँ

1.31.4. अंतिम कालीन रचनाएँ

1.32. अवधी भाषा के अंतर्गत आनेवाली रचनाएँ

1.32.1. रामचरितमानस

1.32.2. रामललानहछू

1.32.3. जानकी मंगल

1.32.4. पार्वती मंगल

1.32.5. रामाज्ञा प्रश्न

1.32.6. दोहावली

1.32.7. वैराग्य संदीपनी

1.32.8. बरवै रामायण

1.33. ब्रज भाषा में लिखे गए मुख्य ग्रंथ

1.33.1. गीतावली

1.33.2. विनयपत्रिका

1.33.3. कृष्ण गीतावली

1.33.4. कवितावली

1.33.5. हनुमान बाहुक

1.34. निष्कर्ष

1.35. सारांश

1.36. सम्भाव्य प्रश्न

1.0. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में गोस्वामी तुलसीदास के बहुमुखी व्यक्तित्व, जीवनी एवं कृतित्व की विशेषताओं का परिचय दिया जा रहा है । तुलसीदासजी विश्व की उन महान विभूतियों में हैं जिन्होंने केवल अपने युग को ही प्रेरणा नहीं दी अपितु भावी पीढ़ियों के लिए भी एक ऐसी थाती छोड़ गए हैं जो भाषा, साहित्य एवं संस्कृति को सदैव अनुप्राणित करती रहेगी । तुलसीदास की जीवन संबंधी कतिपय घटनाएँ उनकी रचनाओं में उपलब्ध हैं जिसके आधार पर उनके जीवन वृत्तांत को भी आंकने का प्रयास किया गया है । उनकी जन्म तिथि, जन्म स्थान, माता-पिता, परिवार, बाल्यावस्था, गुरू, यौवनावस्था, वैराग्य, देहावसान आदि से पाठकों का परिचय कराया गया है । साथ ही उनके द्वारा विरचित रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली, विनय पत्रिका, कृष्णगीतावली, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, हनुमान बाहुक, वैराग्य संदीपनी, रामललानहछू आदि का मूल्यांकन किया गया है ।

1.1. उद्देश्य

तुलसीदास का व्यक्तित्व बहुमुखी था । भक्तिकालीन कवि होने के नाते तुलसीदास का जीवन वृत्त अंधेरे के गर्त में डूबा हुआ है । अधिकांश जीवन वृत्त अप्रमाणिक है । प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य तुलसीदास के जीवन का एक समग्र लेखा जोखा पेश कर पाठकों को उनके जीवन एवं व्यक्तित्व के बारे में जानकारी प्राप्त कराने का है । साथ ही उनके कृतियों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि यद्यपि वे राम भक्त थे लेकिन लोक कल्याण की भावना के कारण ही उनके काव्य जनप्रिय बने हैं । उनके कृतियों में वर्णित भक्ति, दर्शन एवं काव्यकला की त्रिवेणी युग-युग तक लोक मानस में चैतन्य की रश्मियाँ संव्याप्त करने में सर्वथा समर्थ हैं ।

तुलसीदास एक भक्त कवि थे । राम की भक्ति में वे इतने विभोर थे कि अपने आराध्य देव के व्यक्तित्व के आगे अपने व्यक्तित्व को प्रकाशित नहीं करना चाहते थे । अतः उन्होंने अपने बारे में विशद रूप से जानकारी देने की कोई तत्परता नहीं दिखाई । प्राप्त सामग्री के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित संपूर्ण रूप से प्रामाणिक नहीं है । अंतः साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य के आधार पर तुलसी के जीवन, व्यक्तित्व एवं रचनाओं का लेखा-जोखा आंकने का उपक्रम किया जा रहा है ।

1.2. गोस्वामीजी का जीवन-वृत्त अभी तक विवादास्पद है

अभी तक की गई खोजों का विवरण और उनके आधार पर उपलब्ध निष्कर्ष का विवेचन किया जा रहा है ।

1.3. गोस्वामीजी के जीवन से संबंधित उपलब्ध सामग्री

इसे हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं -

1.3.1. अंतः साक्ष्य

गोस्वामीजी द्वारा लिखित ग्रंथों में उपलब्ध सामग्री यथा इनके द्वारा रचित रामचरितमानस, विनयपत्रिका, कवितावली, दोहावली, बरवै रामायण, पार्वती मंगल और हनुमान बाहुक में तुलसी जी की जीवनी संबंधी संकेत प्राप्त होते हैं ।

1.3.2. बहिर्साक्ष्य

(i) तुलसीदास के समकालीन और परवर्ती कवियों एवं लेखकों की रचनाओं में उपलब्ध संकेत और सामग्री तथा (ii) विभिन्न स्थानों से संबंधित सामग्री ।

1.4. समकालीन और परवर्ती कवियों के ग्रंथ

इस सामग्री के अन्तर्गत मुख्य ग्रंथ हैं - भक्तमाल, भक्ति रस

बोधिनी, (भक्तमाल की टीका), दो-सौ-बावन वैष्णवन की वार्ता, मूल गोसाई चरित,तुलसी चरित, तुलसी साहिब लिखित आत्म चरित, तुलसीदास स्तक तथा भविष्य पुराण । इन ग्रंथों में अधिकांश की प्रामाणिकता संदिग्ध है और अनके द्वारा तुलसीदास के जीवन संबंधी तथ्यों पर बहुत कम प्रकाश पड़ता है । इन समस्त ग्रंथों में संवत् 1687 में बाबा वेणी माधव द्वारा विरचित 'मूलगोसाई चरित' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । इस ग्रंथ में गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-वृत्त सिलसिलेवार तिथियों के आधार पर दिया गया है । डॉक्टर श्यामसुंदरदास और डॉ. पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने इस ग्रंथ को प्रामाणिक माना है । डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने इस ग्रंथ को प्रामाणिक नहीं माना है । उनका कथन है कि गणना के अनुसार इन तिथियों में तथा अन्तर्साक्ष्य के आधार पर उपलब्ध तिथियों में संगति नहीं बैठती है । रामनरेश त्रिपाठी ने कुछ अन्य ग्रंथों का भी अध्ययन किया है । यथा - प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका, रानी कमल कुँवरि देवजू द्वारा लिखित 'गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित' तथा बैजनाथ कुरमी द्वारा लिखित 'गोस्वामीजी का जीवन चरित', सर जार्ज ग्रियर्सन द्वारा लिखित Notes on Tulsidas इस विषय की बहुत महत्त्वपूर्ण सामग्री हैं ।

1.5. विभिन्न स्थानों से संबंधित सामग्री

1.5.1. काशी की सामग्री

काशी में तुलसीघाट, प्रह्लादघाट, गोपाल मंदिर आदि कुछ ऐसे स्थान हैं जिनका संबंध गोस्वामी के साथ बताया जाता है । यहाँ तीन अन्य महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं -

(क) संवत् 1669 में लिखा हुआ पंचायत नामा

(ख) संवत् 1641 में लिखित वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड की एक प्रति

(ग) संवत् 1666 में लिखी हुई विनयपत्रिका की एक प्रति ।

1.5.2. अयोध्या की सामग्री

यहाँ दो वस्तुएँ प्राप्त होती हैं -

(क) तुलसी-चौरा और उससे संबंधित जनश्रुतियाँ ।

(ख) संवत् 1661 में लिखी हुई 'मानस' के बालकाण्ड की हस्तलिखित प्रति

1.5.3. राजापुर की सामग्री

(क) तुलसीदास का तथाकथित मकान

(ख) पं. मुन्नीलाल उपाध्याय के पास सुरक्षित गोस्वामीजी द्वारा लिखित 'मानस' की प्रति

(ग) गोस्वामीजी की प्रस्तर मूर्ति ।

1.5.4. सोरो की सामग्री

सोरो तथा उसके आसपास प्राप्त सामग्री कई प्रकार की हैं -

(क) मानस के बालकाण्ड की तथा अरण्यकाण्ड की एक-क प्रति ।

(ख) रत्नावली लघु दोहा संग्रह की दो प्रतियाँ ।

(ग) दोहावली रत्नावली की एक प्रति ।

(घ) कृष्णदास रचित 'सूकर क्षेत्र माहात्म्य भाषा' ।

(ङ) मुरलीधर चतुर्वेदी कृत रत्नावली

(च) तुलसीदास का तथाकथित स्थान

(छ) तुलसीदास के भाई नन्ददास के उत्तराधिकारी

(ज) नरसिंह जी का मन्दिर ।

1.6. जनश्रुतियाँ एवं किंवदन्तियाँ

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन से संबंधित अनेक जनश्रुतियाँ हैं । इनके आधार पर गोस्वामीजी के जीवन से संबंधित अनेक बातें

मान्य भी हो गई हैं । जनश्रुति तुलसी का जन्म संवत् 1589 मानती है । जनश्रुति के अनुसार तुलसीदासजी के पिता का नाम आत्माराम दुबे, माता का नाम हुलसी और कुल सरयूपारीण ब्राह्मण था। जनश्रुति इनका जन्मस्थान राजापुर मानती है । इनकी मृत्यु के संबंध में जनश्रुति से चला आया हुआ यह दोहा अत्यंत प्रसिद्ध है -

संवत सोरह सौ असी, असी गंग के तीर ।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यौ सरीर ।।

उपलब्ध उपर्युक्त सामग्री के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास के जीवन संबंधी तथ्यों की स्थापना की गई है जिसका लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जा रहा है ।

1.7. जन्म-काल

तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में जन्म-काल के संबंध में कहीं भी संकेत नहीं किया है । इसलिए इनके जन्मकाल का न्यायोचित निर्धारण नहीं हो पाता है । तुलसीदास जी की जन्म तिथि के संबंध में मुख्यतः तीन मत है -

(i) श्रावण शुक्ला सप्तमी, संवत् 1554 । 'मूलगोसाई चरित' के लेखक वेणीमाधवदास, आचार्य पं. रामचंद्र शुक्ल, डॉ. श्यामसुन्दरदास तथा नन्दन पाठक ने संवत् 1554 को गोस्वामीजी का जन्मकाल माना है ।

(ii) संवत् 1583 । 'शिवसिंह सरोज' के अन्तर्गत शिवसिंह सेंगर ने तुलसी का जन्मकाल संवत् 1583 माना है ।

(iii) संवत् 1589 । शिवसिंह सेंगर, संत तुलसी साहिब, डॉ. गियर्सन, रामगुलाम द्विवदी, रामनरेश त्रिपाठी तथा डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने तुलसी का जन्मकाल भाद्रपद शुक्ला ।। संवत् 1589 माना है ।

इन विद्वानों के अनुसार गणना से यह तिथि ठीक बैठती है । जनश्रुति भी इसका समर्थन करती है ।

इस प्रकार तुलसी की जन्म तिथि के संबंध में मुख्य दो मत हैं - भादों शुक्ला ।।, संवत् 1589 तथा श्रावण शुक्ला 7 संवत् 1554 । मान्य तिथि संवत् 1589 को लिया जा सकता है जिसकी पुष्टि दोहा रत्नावली के इस लेख से होती है कि संवत् 1627 में जब रत्नावली 27 वर्ष की थी, तब तुलसी और रत्नावली का वियोग हुआ था । विवाह के समय तुलसी 23-24 वर्ष के और रत्नावली 12 वर्ष के आसपास थी । अतः 1589 भाद्रपद शुक्ल एकादशी मंगलवार तुलसी का जन्म दिवस न्याय संगत है ।

1.8. जन्म स्थान

जन्मकाल के समान ही तुलसी के जन्म-स्थान के संबंध में भी आलोचकों में मतभेद है । तुलसी ने अपने काव्य ग्रंथों में अपने संबंध में कहीं भी एक पंक्ति नहीं लिखी । संसार को राममय देखने वाला महात्मा तुलसी तो

''स्वारथ सुख सपनेहुं अगम परमारथ न प्रबेश ।
राम नाम सुनिरत मिटहिं तुलसी कठिन कलेस ।''

सिद्धांत के प्रतिपादक थे । सोरों समस्या के आविर्भाव के पूर्व बाबा बेणी माधव दास तथा बाबा रघुबरदास तुलसीदासजी का जन्म बाँदा जिले के राजापुर ग्राम को ही मानते रहे । डॉ. चन्द्रबली पाण्डेय ने - 'तुलसी तिहारो घर जायो है घर को' (कवितावली) पंक्ति के अनुसार तुलसी का जन्मस्थान कहीं अवध में माना है । श्री रजनीकांत शास्त्री ने विनय पत्रिका तथा मानस की पंक्तियों से काशी को तुलसी की जन्मभूमि कहा है । डॉ विल्सन ने तारी को और डॉ. रामदत्त भारद्वाज, रामनरेश त्रिपाठी और पं. भद्रदत्त शर्मा ने सूकर खेत (सोरों) को माना है । तासी ने हाजीपुर को माना है ।

इस प्रकार तुसली के जन्मस्थान जिनका संकेत आलोचकों ने किया है किया है, निम्न हैं -

1. राजापुर
2. अवध प्रदेश का कोई स्थान
3. काशी
4. तारी
5. सोरों
6. हाजीपुर

डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने बाँदा के गाज़ेटियर तथा राजापुर एवं सारों में प्रचलित जनश्रुतियों की समीक्षा की है । उनका निष्कर्ष इस प्रकार है, ''दोनों पक्षों के प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर यह कहना कठिन है कि दोनों में से कौन सा स्थान कवि का जन्मस्थान है । यह अवश्य निश्चित जान पड़ता है कि गोस्वामीजी बहुत समय तक राजापुर में रहे और यात्रा उन्होंने कदाचित् उसी सूकर क्षेत्र की जो सोरों कहलाता है की थी ।''

1.9. नाम

गोस्वामीजी ने अपनी प्रायः समस्त रचनाओं में 'तुलसी' और तुलसीदास का उल्लेख किया है । 'दास' शब्द कवि की दैन्य भावना का द्योतक है । जहाँ तक 'राम बोला' नाम की संगति और सार्थकता का प्रश्न है तुलसी का पहला और मूल नाम 'राम बोला' था । संभव है, राम राम बोलकर भीख माँगने के कारण यह नाम पड़ा हो और लोग उन्हें 'रामबोला' और 'रामबोलवा' कहकर पुकारते रहे हों । इस नाम का उल्लेख विनय पत्रिका और कवितावली के निम्न छंदों में हुआ है -

(1) **''राम को गुलाम, नाम रामबोला राख्यो राम,**
काम यहै, नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं ।
रोटी-लूगा नीके राखै, आगेहू की बेद भाखे ।''
(विनय पत्रिका)

(2) **''राम बोला नामु है, हौं गुलामु रामसाहि को ।''**
(कवितावली उत्तरकाण्ड)

'तुलसी' से 'तुलसीदास' होने का उल्लेख दो स्थानों में प्राप्त होता है -

(1) **''नाम तुलसी, पै भोंडो भाँग ते, कहायो दासू,**
कियो अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को''
(कवितावली उत्तरकाण्ड)

(2) **''केहि गिनती महँ गिनती जस बन घास**
राम जपत भए तुलसी, तुलसीदास ।''
(बरवैरामायण, उत्तरकाण्ड)

अतः यह स्पष्ट है कि तुलसीदास का पहला नाम रामबोला ही था । बाद में तुलसी और तुलसीदास हुआ ।

1.10. उपाधि

तुलसी के नाम के पहले 'गोसाई' शब्द उपाधि का द्योतक है । महात्मा होने के नाते ही उन्हें इस उपाधि से विभूषित किया गया था । इसका स्पष्ट उल्लेख तुलसीदास ने हनुमान बाहुक में किया है -

तुलसी गोसाइँ भयौ भोड़े दिन भूलि गयो ।
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं ।।

1.11. माता पिता और परिवार

पिता के नाम और परिवार का उल्लेख कहीं भी, उनकी रचनाओं में नहीं मिलता किंतु 'हुलसी' शब्द का उल्लेख अवश्य हुआ है - यथा -

(1) **''रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी ।**
तुलसीदास हित हिय हुलसी सी ।।'' **(मानस)**

(2) **''संभु प्रसाद सुमति हियें हुलसी ।**
रामचरितमानस कवि तुलसी ।।'' **(मानस)**

'हुलसी' शब्द के संबंध में आलोचकों की धारणा है कि यह 'हुलसी' शब्द श्लेषार्थ में प्रयुक्त हुआ है जिसका एक अर्थ 'प्रसन्न होना' है । संभवतः तुलसी ने इसी 'प्रसन्न होने' के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है, किंतु कुछ आलोचकों ने 'हुलसी' का अर्थ 'माता' भी किया है । पर जिस माँ ने तुलसीको जन्मते ही छोड़ दिया हो, उसका कौन-सा सुख स्मरण करके वे उसके गुणों का गायन करेंगे -

(1) **''मातु पिता जग जाय तज्यो**
विधिहूँ न लिखी कछु भाल भलाई''

(कवितावली उत्तरकाण्ड)

(2) **''जननी-जनक तज्यो जनमि,**
करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे''

(विनय पत्रिका)

इससे यह सिद्ध होता है कि तुलसी की माँ हुलसी नहीं थी । इसी विषय पर समानांतर धारण यूँ भी है - रहीम के निम्नांकित दोहे के अनुसार हुलसी को तुलसी की माता कहा जा सकता है, यथा -

सुरतिय नरतिय नागतिय अस चाहति सब कोय ।
गोद लिये हुलसी फिरे तुलसी सो सुत होय ।।

पिता के संबंध में तीन मत हैं - कोई रूद्रनाथ मिश्र बताते हैं कोई परशुराम मिश्र और कोई आत्माराम दुबे । सोरों से प्राप्त सामग्री के अनुसार इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे था । यही मत अधिकांशतः मान्य है ।

1.12. अवस्था

रचनाओं में तुलसी की बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था का उल्लेख मिलता है । तुलसी का जन्म एक दरिद्र कुल में हुआ था, इसी कारण उन्हें जीवन में अनेक कष्ट झेलने पड़े ।

''जायो कुल मंगन बधावनो बलायो, सुनि
भयो परितापु पापु जननी जनक को ।
बारे तें ललात-बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हो चारि फल चारि ही चनक को ।''

(कवितावली उत्तरकाण्ड)

अर्थात् भिक्षा माँगने वालों के यहाँ मेरा जन्म हुआ । जिसके उपलक्ष में बधावा नहीं बजा । इस आधार पर माता और पिता को कष्ट हुआ । कष्ट के साथ ही साथ उनके माता-पिता ने उन्हें त्याग भी दिया । ऐसी कुछ आलोचकों की धारणा है । जो कुछ भी हो तुलसी की बाल्यावस्था में ही उनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया और वे अनाथ हो गये । इनका संपूर्ण जीवन परिस्थितियों के झंझावतों में ही बीता ।

1.13. बाल्यावस्था

तुलसी की बाल्यावस्था भिक्षा माँगने और कष्टों में बीती । उदाहरण के लिए -

(1) **''बाल दसा जेते दुख पाये ।**
अति असीम नहिं जाहि गनाये
छुधा-व्याधि-बाधा भई भारी''

(विनय पत्रिका)

(2) **''तुलसी जहँ मातु पिता न सखा नहि कोउ**
कहूँ अवलम्ब देवैया ।

(कवितावली उत्तरकाण्ड)

(3) **द्वार द्वार दीनता कही, काढ़ि रद, परि पाहू ।**

(विनय पत्रिका)

उक्त दोहे इस बात का संकेत करते हैं कि अनाथ होने के हेतु बाल्यावस्था में तुलसी ने अत्यंत कष्ट पाये थे ।

1.14. युवावस्था

तुलसी का यौवन रसिकता में बीता । उदाहरण के लिए -

1. ''जौबन जुवतिन लियो जीति''

(विनय पत्रिका)

2. ''जोबन जुवती सँग रँग रात्यो ।
तब तू महा मोह-मद मात्यो
ताते तजी धरम मरजादा ।
बिसरे तब सब प्रथम बिषादा ।''

(विनय पत्रिका)

द्वितीय उद्धरण में तुलसी ने स्वयं को धिक्कारा है और कहा है तू यौवन के पदार्पण के साथ ही युवतियों के प्रेम में उलझ गया । अज्ञान और अहंकार में मतवाला हो गया ।

1.15. प्रौढ़ावस्था

इस अवस्था का उल्लेख निम्न पंक्तियों में हुआ है -

'मध्य बयस धन हेतु गँवाई,
कृषी बनिज नाना उपाय' (विनय पत्रिका)

1.16. वृद्धावस्था

वृद्धावस्था के आते ही तुलसी जी शरीर से जीर्ण हो गये थे ।

1. ''विकल अंग दले जरा धाय'' (विनय पत्रिका)
2. रोग-बियोग-सोग-श्रम सकुल बडिबय बृथहि अतीति
(विनय पत्रिका

1.17. जाति, कुल और गोत्र

तुलसी ब्राह्मण कुल में जन्मे थे । यथा -

भागीरथी जलु पानु करौं,
अरू नाम द्वै राम के लेत नितै हौं ।
ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि
हौं त्यों ही तिहारें हिएँ न हितै हौं ।। (कवितावली)

समस्या है, कवि की उपजाति की । सुधाकर द्विवेदी तथा ग्रियर्सन इन्हें सरयूपारीण मानते हैं । सोरों जन्मस्थान के समर्थक इन्हें सनाढ्य मानते हैं । मिश्रबंधु और तुलसी साहब ने उन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण माना है । संक्षेप में तुलसी की जाति ब्राह्मण थी किंतु 'उपजाति' का निर्धारण नहीं किया जा सकता है । जहाँ तक गोत्र की बात है संत का कोई भी गोत्र नहीं होता । उसका गोत्र वही होता है जो उसके आराध्यदेव का होता है । इस संबंध में कवि का निम्न कथन द्रष्टव्य है -

''अति ही अयाने उपखानों नहिं बूझैं लोग
साह ही को गोतु गोतु होत है गुलाम को ।।''

(कवितावली)

1.18. गुरू

भक्त होने के नाते तुलसी ने मानस के प्रारंभ में अपने गुरू की वन्दना की है -

'बदउ गुरपद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरि
महा मोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर ।।

इस कथन के आधार पर गोस्वामीजी ने अपने इस काव्य में तीन गुरू माने हैं - शिवजी को, नरहरि जी को, श्री रामचरित को (मानस पीयष) । गुरू बन्दना में नरहरि का उल्लेख है जिसका अर्थ नरहरिदास ही लिया जाता है । इन्हीं गुरू नरहरिदास से तुलसी ने सूकर क्षेत्र में राम कथा सुनी थी ।

1.19. प्रकृति और स्वभाव

तुलसी नम्र, विनयी एवं सरल स्वभाव के व्यक्ति थे । उन्हें राम-नाम के माहात्म्य एवं राम की कृपा में अविचल विश्वास था ।

गृहस्थ जीवन तथा वैराग्य

तुलसी ने गृहस्थ जीवन भी स्वीकारा था । सोरों सामग्री के अनुसार इनकी पत्नी का नाम रत्नावली था । तुलसी को उद्‌बोधन

उनकी स्त्री से ही मिला । 'लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ' की बात बहुप्रचलित है ।

1.20. वैराग्य

तुलसी ने आराध्यदेव राम को अपने प्रेम का आलंबन केवल हृदय-परिवर्तन के रूप में बनाया था । उनके हृदय में अनुराग तथा आत्म परित्याग पहले से ही विद्यमान था । जो प्रेम तुलसी में स्त्री के प्रति था, वही, पत्नी के यह कहने पर,

''अस्थि चर्ममय देह मम
तामैं जैसी प्रीति ।
तैसी लौ श्री राम महँ,
होति न तौ भवभीति''

अपने उसी अनन्य व अगाध रूप में भगवान की ओर मुड़ गया । भगवान के महत्त्व ने उस प्रेम में श्रद्धा को उड़ेला और इस प्रकार तुलसी का लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम में परिवर्तित हुआ

घर कीन्हें घर जात है
घर छाँड़े घर जाइ ।
तुलसी घर बन बीच हीं
राम प्रेम पुर छाइ ।।

इस कथन से यह ध्वनित होता है कि तुलसी ने एकांत जीवन को ग्रहण किया ।

1.21. पर्यटन तथा तीर्थयात्रा

वैराग्य के बाद तुलसी ने पर्यटन किया था । मानस की रचना उन्होंने अयोध्या में प्रारंभ की थी, पर बालकांड, अयोध्याकाण्ड और अरण्यकांड लिखने के पश्चात् वे काशी पहुँच गये थे और वहीं उन्होंने किष्किंधाकांड प्रारंभ किया था -

''मुक्ति जन्म महि जानि गयान खानि अध हानिकर
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न'' **(मानस)**

काशी को तो तुलसी ने अपनी साधना का स्थान सा बना लिया था । प्रसिद्ध जनश्रुति के अनुसार असीघाट पर उन्होंने शरीर त्यागा था । विनयपत्रिका की एक पंक्ति इस ओर संकेत करती है कि तुलसी को चित्रकूट में राम के दर्शन हुए थे -

''तुलसी ! तो को कृपालु जो कियो कोसल पालु,
चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो''

काशी और चित्रकूट के अलावा कुछ समय अन्य तीर्थ और पवित्र स्थानों पर भी वे रहे हैं जो इस प्रकार हैं - अयोध्या, प्रयाग, बदरिकाश्रम ।

1.22. जीवन यात्रा का अंत एवं देहावसान

तुलसी के देहावसान के बारे में भी भिन्न-भिन्न मत हैं । कुछ आलोचकों के अनुसार प्लेग से, कुछ के अनुसार फोड़े से और कुछ के अनुसार स्वाभाविक रीति से वृद्धावस्था की जर्जरता के कारण मृत्यु हुई । जनश्रुति के आधार पर संवत् 1680 का श्रावण शुक्ला सप्तमी को कासीघाट पर उनकी मृत्यु हुई थी । यथा -

सम्वत् सोरह सो असी असी गंग के तीर ।
सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यों शरीर ।''

1.23. काव्य कृतियाँ

गोस्वामी तुलसीदास ने किन ग्रंथों की रचना की है इसका उल्लेख इनके किसी ग्रंथ में उपलब्ध नहीं होता है । अपने कुछ ही ग्रंथो में उन्होंने अपनी रचनाओं के बारे में छुट-पुट संकेत मात्र दिए हैं । अतः इस संबंध में अन्तः साक्ष्य मौन है और अधिकांशतः हमको बहिर्साक्ष्य का ही सहारा लेना पड़ता है ।

अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के आधार पर अनेक विद्वानों एवं संस्थाओं ने गोस्वामीजी द्वारा रचित ग्रंथों की खोज की है और सबने अपने अपने अनुसार उनके ग्रंथों की संख्या निर्धारित की है । तुलसी के ग्रंथों की चर्चा के मुख्य स्रोत तीन हैं । यथा -

1.24. नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट

इसके अनुसार गोस्वामी विरचित 35 हैं -

(1) रामज्ञा (2) छन्दावली-रामायण (3) बाहु-सर्वांग (4) रामशलाका (5) वृहस्पति कांड (6) पार्वती-मंगल (7) रामलला नहछू (8) अंकावली (9) उपदेश दोहा (10) कवित्त रामायण (11) कृष्णचरित (12) गीतावली-रामायण (13) कृष्ण-गीतावली (14) छप्पय-रामायण (15) जानकी-मंगल (16) तुलसी-सतसई (17) बरवै-रामायण (18) भगवद्गीता-भाष्य (19) रस-भूषण (20) रामचरितमानस (21) विनयपत्रिका (22) वैराग्य संदीपनी (23) सगुनाती (24) सूरज पूराण (25) ज्ञान का प्रकरण (26) ज्ञान-दीपिका (27) पदावली रामायण (28) तुलसीदासजी की बानी (29)दोहावली (30) ध्रुवप्रश्नावली (31) बाहुक (32) मंगल-रामायण (33) रसकल्लोल (34) राम मुक्तावली (35) आरती ।

1.25. शिवसिंह सेंगर कृत शिवसिंह सरोज

आपने गोस्वामी कृत 7 रामायण और 11 अन्य ग्रंथ बताए हैं, यथा -

(1) चौपाई रामायण (2) कवितावली (3) गीतावली (4) छंदावली (5) बरवै (6) दोहावली (7) कुंडलियाँ (8) सतसई (9) रामसलाका (10) संकट मोचन (11) हनुमान बाहुक (12) कृष्णगीतावली (13) जानकी-मंगल (14) पारवती-मंगल (15) करखाछन्द (16) रोला-छन्द (17) झूलना छंद (18) विनयपत्रिका

1.26. सर जार्ज ग्रियर्सन

आपने तुलसी के ग्रंथों का उल्लेख तीन प्रकार से किया है -

(क) ''नोट्स ऑन तुलसीदास'' - 21 ग्रंथ
(ख) ''इन्ट्रोडक्शन टु मानस'' - 17 ग्रंथ
(ग) ''एन्साइक्लोपीडिया आव रिलीजन एण्ड एथिक्स'' - 12 ग्रंथ

अंत में इन्होंने 12 ग्रंथ ही प्रामाणिक माने हैं - (1) रामचरितमानस (2) रामलला नहछू (3) वैराग्य संदीपनी (4) बरवै-रामायण (5) पार्वती-मंगल (6) जानकी मंगल (7) रामाज्ञा प्रश्न (8) दोहावली (9) कवितावली (10) गीतावली (11) श्रीकृष्ण गीतावली तथा (12) विनयपत्रिका

1.27. मिश्रबंधु 12 ग्रंथों को प्रामाणिक मानते हैं

(1) रामचरितमानस (2) कवितावली (3) गीतावली (4) जानकी-मंगल (5) कृष्ण गीतावली (6) हनुमान-बाहुक (7) हनुमान-चालीसा (8) रामशलाका (9) राम-सतसई (10) विनय पत्रिका (11) कलिधर्म निरूपण (12) दोहावली

1.28. आचार्य रामचंद्र शुक्ल

पं. रामचन्द्र शुक्ल तुलसी ग्रंथावली के संपादकों में प्रमुख हैं । इनके अनुसार गोस्वामी के रचित बारह ग्रंथ प्रसिद्ध हैं जिनमें छः बड़े और छः छोटे हैं।

1.28.1. बड़े ग्रंथ

1. दोहावली, 2. कवित्त रामायण (कवितावली) 3. गीतावली, 4. रामचरितमानस, 5. रामज्ञा प्रश्न, 6. विनयपत्रिका

1.28.2. छोटे ग्रंथ

1. रामलला नहछू, 2. पार्वती मंगल, 3. जानकी मंगल, 4. बरवै रामायण, 5. वैराग्य संदीपनी, 6. कृष्णगीतावली ।

1.29. डॉ. माताप्रसाद गुप्त

आपने अपने ग्रंथ तुलसीदास के अन्तर्गत तुलसी की कृतियों को दो श्रेणियों में विभक्त किया है -

1.29.1. वे रचनाएँ जो साधारणतः कविकृत मानी जाती हैं

इनकी संख्या 13 मानी है। इनमें सतसई भी है तथा कवितावली को बाहुक के साथ मिला दिया है ।

1.29.2. अन्य रचनाएँ

इस श्रेणी में 24 ग्रंथों की गणना की है ।

1.30. डॉ. भागीरथ प्रसाद दीक्षित

आपने 'तुलसीदास और उनके ग्रंथ' पुस्तक में तुलसीकृत ग्रंथों की संख्या 15 मानी है । इनमें इन्होंने 14 प्रामाणिक माने हैं और 15 वें के बारे में अधिक खोज का सुझाव दिया है । इन्होंने 12 मान्य ग्रंथों के अतिरिक्त 'सतसई' और 'कुण्डलिया रामायण' ग्रंथों को भी माना है । 15 वाँ ग्रंथ है 'हनुमान चालीसा' जो उनके अनुसार गोस्वामी विरचित ही है ।

विद्वानों ने तुलसीदासजी के रचनाकाल पर भी विस्तारपूर्वक विचार किया है । सारांश रूप में गोस्वामीजी के सर्वमान्य ग्रंथ काल-क्रमानुसार निम्न प्रकार हैं -

(1) रामलाल नहछू (गार्हस्थ-जीवनकाल रचना) ।
(2) वैराग्य संदीपनी (गृहत्याग के पश्चात् की रचना)।
(3) रामाज्ञा प्रश्न (संवत् 1621 में काशी में रचित) ।
(4) रामचरितमानस् (संवत् 1631 अयोध्या व काशी में रचित) ।
(5) सतसई (संवत् 1642) ।
(6) जानकी मंगल (संवत् 1643) ।
(7) पार्वती मंगल (संवत् 1643) ।

(8) गीतावली (संवत् 1653) ।
(9) कृष्ण गीतावली (संवत 1658) ।
(10) बरवै रामायण (काशी में रचित) संवत् 1661-80 के बाद ।
(11) विनय पत्रिका (काशी में रचित) सं. 1653 ।
(12) दोहावली (संवत् 1643 से 1680 तक) ।
(13) कवितावली और बाहुक (संवत् 1611-80 के बीच) ।

कुछ विद्वान बाहुक को कविताली का अंग नाटक मानकर एक पृथक रचना मानते हैं ।

1.31. अवस्था तथा विकासक्रम की दृष्टि से इन रचनाओं का वर्गीकरण यूँ होगा

1.31.1. प्रारंभिक अवस्था की रचनाएँ

संवत् 1611 से 1625 के मध्य की रचनाएँ - 1. रामलला नहछू, 2. वैराग्य संदीपन और रामाज्ञा प्रश्न 1. इन ग्रंथों की भाषा एवं भावाभिव्यक्ति अपेक्षाकृत कम प्रौढ़ है ।

1.31.2. मध्यकालीन अवस्था की रचनाएँ

संवत् 1626 से लेकर संवत् 1645 तक की रचनाएँ - (1) जानकी मंगल (2) पार्वती-मंगल (3) रामचरितमानस और (4) सतसई ।

1.31.3. उत्तरकालीन रचनाएँ

संतत् 1646 से लेकर संवत् 1660 के बीच की रचनाएँ । (1) गीतावली (2) विनय पत्रिका (3) श्रीकृष्ण गीतावली ।

1.31.4. अंतिम कालीन रचनाएँ

1661से 1680 तक की रचनाएँ (1) बरवै रामायण (2) दोहावली (3) कवितावली (4) बाहुक

प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त विवरण

1.32. अवधी भाषा के अंतर्गत आने वाली रचनाएँ

1.32.1. रामचरितमानस

रामचरितमानस का प्रतिपाद्य राम को परब्रह्म सिद्ध करना तथा राम भक्ति का प्रचार करना है । मानस हिन्दी साहित्य का वह काव्य है जो लोक हित की साधना में तत्पर है । इस महाकाव्य में आदर्शवाद की प्रतिष्ठापना हुई है । रामकथा के सांगोपांग अध्ययन के लिए तुलसी की एक ही कृति पर्याप्त है - मानस ।

तुलसीदास के रामचरितमानस के कथा-स्त्रोत हैं - पुराण, निगम, आगम, वाल्मीकि रामायण, महाभारत, प्रसन्न राघव, हनुमन्नाटक, श्रीमद्भागवत् गीता आदि । रामचरितमानस का रचनाकाल संवत् 1631 है । इसमें गोस्वामी तुलसीदास ने रामकथा का वर्णन चार प्रकार से किया है अथवा उसके वक्ता-श्रोता चार-चार हैं । इसमें रामचरित का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि ज्ञान के प्रत्येक स्तर का व्यक्ति उसका रसास्वादन कर सके । इसी तथ्य को लक्ष्य करके उन्होंने ठीक ही लिखा था -

रामचरित जे सुनत अघाहीं ।
रस बिसेस जाना तिन नाहीं ।

इसमें उपदेश, आदर्श ज्ञान, भक्ति, धर्म आदि का निरूपण किया गया है और प्रत्येक क्षेत्र में यह एक उत्कृष्ट रचना ठहरती है । राम के सौंदर्य, शील तथा शक्ति का सांगोपांग चित्रण किया गया है । इसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन की प्रत्येक समस्या का समाधान प्राप्त होता है ।

मानस में कथा-काव्य के समस्त अवयवों - इतिवृत्त,

वस्तु-व्यापार-वर्णन, भाव-व्यंजना और संवाद-का उचित समीकरण दिखाई देता है । भावों की व्यंजना संक्षिप्त एवं मार्मिक हैं ।

मार्मिक स्थल जैसे - राम जानकी का प्रथम मिलन, राम-वन-गमन, सीता-हरण, चित्रकूट में राम-भरत-मिलन, भरत की आत्म ग्लानि, युद्ध में लक्ष्मण को शक्ति लगना, सीता की अग्नि-परीक्षा आदि प्रसंगों का सविस्तार एवं भावुकतापूर्ण वर्णन किया है । श्रृंगार रस का वर्णन अत्यंत मर्यादित ढंग से किया है । श्रद्धा तथा दास्य भावना से युक्त भक्ति और लोकाश्रित धर्म की प्रतिष्ठा मानस की उपलब्धि है ।

रामचरितमानस में जीवन के समग्र रूप का चित्रण किया गया है । यह व्यक्ति की दृष्टि तथा समष्टि की दृष्टि से चित्रित है । यथा -

(i) राम के समग्र जीवन का चित्रण - जन्म, विवाहादि से लेकर अंत समय तक के जीवन का चित्रण ।
(ii) मानव जीवन के विविध पक्षों का चित्रण ।
(iii) नाना विधि कार्यों का चित्रण ।
(iv) विविध प्रकार के पात्रों का चरित्र-चित्रण ।
(vi) तत्कालीन परिस्थितियों अर्थात् तत्कालीन युगजीवन का यथार्थ एवं सजीव चित्रण ।

मानस में पौराणिक शैली तथा महाकाव्य की शैली का समन्वित रूप दिखाई देता है । मानस में दो कोटियों के चरित्र मिलते हैं - आदर्श और सामान्य । राम, रावण, भरत, सीता, हनुमान आदि आदर्श चरित्र हैं । शेष सामान्य चरित्रों की कोटि में आते हैं । धार्मिक एवं आदर्शवादी दृष्टिकोण पर आधारित उनके चरित्र महान बन गए हैं । मानस में लोक-भाषा अवधी का प्रयोग किया गया है । भाषा सर्वथा पात्रानुकूल है ।

उनकी दैन्य भावना एवं निश्छलता के कारण शैली में एक सरसता, सरलता, प्रांजलता एवं रमणीयता आ गयी है । अलंकरण

शैली को न अपनाकर भी तुलसी ने अलंकारों का अच्छा प्रयोग किया है । रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपकातिशयोक्ति आदि उनके प्रिय अलंकार हैं ।

यूँ तो मानस में समस्त रसों की व्यंजना हुई है किन्तु वीररस, शांत रस एवं भक्ति-रस की प्रधानता दिखाई देती है ।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि मानस हिन्दी का महाकाव्य ही नहीं लोकहित की साधना में तत्पर वह महान् धर्म ग्रंथ है जिससे लोगों ने सदैव प्रेरणा तथा आशा ग्रहण की है । वह भारत के लोक-मानस की प्रेरणा का अनंत स्त्रोत एवं सक्षम भण्डार है । काव्य-गुण, कवित्व, भावुकता, कलात्मकता आदि सभी दृष्टियों से यह एक पूर्णरूपेण सफल रचना है ।

1.32.2. रामललानहछू

इस अल्पकाय, ग्रंथ में कुल मिलाकर 20 छंद हैं । नहछू का वास्तविक अर्थ नखछोर होता है । यज्ञोपवीत के अवसर पर नाइन बालक के नाखून काटती है । राम का यह यज्ञोपवीत बालपन में या विवाह के अवसर का है ।

आजु अवधपुर आनन्द नहछू राम क हो

लगता है कि तुलसी ने इस ग्रंथ को यौवनावस्था में रचा था । इसमें श्रृंगार का प्राचुर्य है ।

1.32.3. जानकी मंगल

इस ग्रंथ में 216 छंद हैं । इस की रचना मूलतः पार्वती मंगल की शैली पर की गई है । इसमें राम-जानकी के विवाह का सजीव वर्णन मिलता है । अनुमान लगाया जाता है कि 1643 के आसपास इस ग्रंथ की रचना हुई । अलंकारों के प्रयोग से काव्य उपादेय बन पाया है ।

1.32.4. पार्वती मंगल

यह अवधी का एक छोटा सा ग्रंथ है । इसमें कुल 164 छंद हैं । शिव-पार्वती के विवाह का कवि ने सजीव वर्णन किया है । कहानी यूँ चलती है -हिमालय की पत्नी मैना ने एक सुन्दर पुत्री को जन्म दिया । उसका नाम पार्वती रखा रखा गया । मुनि ने भविष्यवाणी की कि कन्या का वर पागल होगा । इस शाप से बचने के लिए मुनि ने पार्वती को भगवान शिव की तपस्या करने को कहा । घोर तपस्या से शिवजी प्रसन्न हुए । तब सप्तऋषियों ने हिमालय के घर जाकर विधिवत लग्न संपन्न किया । इस प्रकार शिव-पार्वती का विवाह हुआ । पार्वती मंगल में कहीं-कहीं एक ही छंद का प्रयोग हुआ है । श्रृंगार रस अंगीरस है, वियोग को प्रधानता दी गयी है ।

1.32.5. रामाज्ञा प्रश्न

इसमें रामकथा के माध्यम से शकुल विचार की बात कही गयी है । इसमें सातकाण्डों में सात सप्तक हैं, प्रत्येक सप्तक में सात दोहे हैं । इस प्रकार इसमें 343 दोहे हैं ।

1.32.6. दोहावली

इसमें दोहे संग्रहीत हैं । साथ ही सोरठे दोहे भी इसमें उपलब्ध हैं । दोहावली में राम-संबंधी दोहे ही नहीं, नीति-संबंधी और सामायिक विचारधारा पर गोस्वामीजी की आलोचना-संबंधी दोहे भी हैं । इसमें कुछ छंद चमत्कार वाले छंद भी आये हैं ।

1.32.7. वैराग्य संदीपनी

इसमें वैराग्य संबंधी भावना उद्दीप्त करने का प्रयास है । वैरागियों के लिए लिखी गयी यह छोटी सी पुस्तक है । दोहा, सोरठा तथा चौपाई आदि छन्दों में रची गयी इस कृति में केवल 62 छंद हैं । वैराग्य संदीपनी में कवि ने राम-ध्यान, रामनाम के

महात्म्य और मानव शरीर की क्षणभंगुरता तथा राम की शरण में जाने के औचित्य का वर्णन किया है । कवि ने संतों के स्वभाव, उनके महात्म्य और शांति का भी वर्णन किया है ।

1.32.8. बरवै रामायण

इस ग्रंथ के संबंध में प्रसिद्ध है कि यह बहुत बड़ा था पर अब छोटा ही मिलता है । इसमें रामकथा पूरी नहीं आयी है किंतु अलंकार-पांडित्य की पूरी छटा है । बरवै रामायण में 69 छंद हैं । कवि ने केवल बरवै छंद का ही प्रयोग किया है । कहते हैं तुलसी ने रहीम द्वारा विरचित 'बरवै नायिका भेद' से प्रेरित होकर ही बरवै रामायण की रचना की ।

1.33. ब्रज भाषा में लिखे गए मुख्य ग्रंथ

1.33.1. गीतावली

गीतावली का रचनाकाल संवत् 1653 माना जाता है । यह सम्यक ग्रंथ के रूप में ना लिखकर स्फुट पदों के रूप में संग्रहित किया गया है । पदों को 'मानस' के काण्डों के क्रमानुसार सजाया गया है । गीतावली की भाषा-शैली प्रौढ़ है । इसके उत्तरकाण्ड में वर्णित कथा वाल्मीकि रामायण से अधिक साम्य रखती है । कथा, स्वरूप तथा घटनाओं में क्रमिक विकास नहीं दिखाई देता । स्फुट पद होने के कारण चरित्र-चित्रण में अपूर्णता है । कुल पदों की संख्या 328 है । गीतावली के ऊपर कृष्ण-काव्य के गायक सूरदास का गहरा प्रभाव दृग्गोचर होता है । इसमें अनेक पद सूरसागर में लिखे गए पदों से संपूर्ण साम्य रखते हैं ।

उदाहरण -

गीतावली - जागिए कृपानिधान जान राम राय रामचन्द्र ।
जननी कहै बार-बार भोर भयो प्यारे ।।
सूरसागर - जागिए गुपाललाल आनन्दनिधि नन्दलाल ।
यशुमति कहै बार-बार भोर भयों प्यारे ।।

शब्दों और पदों के अतिरिक्त सूरसागर तथा गीतावली के प्रकरणों में भी साम्य है । यथा -

(1) कृष्ण के समान ही राम का बाल-वर्णन विस्तार के साथ किया गया है । तुलसीकृत अन्य ग्रंथों में ऐसा नहीं है ।

(2) जिस प्रकार कृष्ण के वियोग में माता यशोदा भाँति-भाँति की कल्पनाएँ करती हैं और पूर्व स्मृतियों का मंथन करती हैं उसी प्रकार माता कौशल्या भी करती हैं । गीतावली के अतिरिक्त ऐसा वर्णन तुलसी की रचनाओं में नहीं मिलता ।

(3) गीतावली के उत्तरकाण्ड में रामराज्य वर्णन के अंतर्गत हिंडोला, बसंत, होली, चाँचर वर्णन में घटनाएँ अधिकतर कृष्ण काव्य के क्षेत्र की हैं । इन घटनाओं के साथ मानस के राम के मर्यादापूर्ण चरित्र की संगति नहीं बैठती है ।

गीतावली एक गीत रचना है । इसमें कोमल भावनाओं को ही प्रायः प्रश्रय मिला है । मानस की भाँति न तो रामावतार की कथाएँ ही हैं और न रामचरित्र की विस्तृत आलोचना । गीतावली में भावनाओं का प्राधान्य है, घटनाओं का नहीं । यह मुक्तक काव्य की श्रेणी में आता है । इसमें भावनाओं का संभार और आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता है । यह एकांत 'माधुर्य' रचना है । श्रृंगार रस की व्यंजना है । संक्षेप में, राम का सौंदर्य और ऐश्वर्य का सफल वर्णन गीतावली में उपलब्ध है ।

1.33.2. विनय पत्रिका

अपने हृदय की दारूण व्यथा व्यक्त करने हेतु तुलसी ने इस ग्रंथ की रचना की । इसमें भगवान राम से कलियुग के विरूद्ध शिकायत की गयी है । कलियुग के विकारों से तुलसी त्रस्त हैं और भगवान की कृपा से उन विकारों व व्याधियों से त्राण पाना चाहते हैं ।

ब्रजभाषा में लिखी हुई यह एक प्रौढ़ रचना है । रचनाकाल 1666 और 1680 के मध्य ठहरता है । यह एक सम्यक ग्रंथ है । मंगलाचरण तथा क्रम से देवी देवताओं की प्रार्थना है । इसमें वैष्णव भक्ति की तथा शरणागति के नियमों का सांगोपांग निर्वाह है । यह प्रबंधात्मक काव्य-ग्रंथ है । इसमें कथा-सूत्र तथा घटनाक्रम के निर्वाह से अधिक तुलसी की मनोवृत्ति का निरूपण द्रष्टव्य है । इसमें एक ही रस, शांत रस का प्राधान्य है । इस ग्रंथ का दृष्टि कोण बहुत उदार एवं व्यापक है । प्रतिपाद्य रामभक्ति है किंतु साधना के लिए विविध साधनों का वर्णन है ।

विनय पत्रिका में तुलसी की भक्ति भावना अपने पूर्ण एवं मार्मिक रूप में अभिव्यक्त है । आपने दास्य भाव की भक्ति में आत्मा की सभी वृत्तियों को सजीव रूप देकर 'विनय-पत्रिका' की रचना की । आचार्य शुक्ल ने विनय पत्रिका के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है -

''भक्ति के कारण अन्तः करण को जो शुभ-वृत्तियाँ प्राप्त होती हैं, सबकी अभिव्यंजना हम 'विनय पत्रिका' के भीतर पा सकते हैं ।''

सारांशतः गोस्वामीजी की 'विनय-पत्रिका' भक्ति रस के नाना स्वादों से भरी हुई है । हिन्दी साहित्य का यह एक अनमोल रत्न है । इसमें आंतरिक प्रेरणा, आवेग, आत्माभिव्यंजन की प्रमुखता, लालित्य तथा प्रवाह का समागम द्रष्टव्य है ।

1.35.3. कृष्ण गीतावली

इसका रचनाकाल संवत् 1658 के आसपास है । यह स्फुट पदों का संग्रह है । इसमें 61 पद हैं । इसमें कोई कांड या स्कन्ध नहीं है । विभिन्न राग-रागनियों में घटना विशेष पर पद लिखे गये हैं ।

इस ग्रंथ में कृष्ण की कथा गाई गयी है । इसमें कृष्ण चरित्र के विभिन्न पक्षों से संबंधित पद हैं । यह एक सरल रचना है ।

इसमें श्रीकृष्ण चरित्र का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया है । इसके कई पद सूरसागर से मिलते हैं ।

श्रीकृष्ण गीतावली में उत्कृष्ट गीतिकाव्य की समस्त विशेषताएँ मिलती हैं जैसे आंतरिक प्रेरणा, आवेग तथा आत्माभिव्यंजन की प्रमुखता ।

इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि इसमें ब्रज प्रांत के स्थानीय शब्दों का प्रयोग हुआ है जैसे ठाली (बेकार) सिगरी रसपूर्ण भट् (प्रिय) आदि । इससे ग्रंथ में स्थानीय वातावरण की सृष्टि हुई है ।

1.33.4. कवितावली

यह गोस्वामीजी के अंतिम समय की रचना है । इसमें स्फुट कवित्त, सवैयों का संग्रह है जिन्हें मानस के काण्डों के अनुसार सजाया गया है । इसमें कुल 325 छंद हैं, जिनमें 183 'उत्तर काण्ड' में हैं । विस्तार की दृष्टि से यह एक मुक्तक काव्य ही कहलाएगा । इसमें राम की कथा का वर्णन है । इस वर्णन में राम के ऐश्वर्य-वर्णन का प्राधान्य है । इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि उसमें कवि के जीवन से संबंधित व्यक्तिगत घटनाओं, तत्कालीन परिस्थितियों तथा विविध भावों का सविस्तार वर्णन किया गया है । तुलसी के जीवन-वृत्त से संबंधित अन्तः साक्ष्य की सामग्री में कवितावली का महत्त्वपूर्ण स्थान है । उत्तर काण्ड में ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की महिमा खूब वर्णित हुई है । इसमें भयानक, रौद्र और अद्‌भुत रसों का परिपाक हुआ है । लंका-दहन का वर्णन बहुत ज्वलंत है । वीर तथा रौद्र रस के साथ-साथ श्रृंगार तथा शांत रस का सुंदर निर्वाह हुआ है । इसमें तुलसी की विभिन्न शैलियों का समावेश मिलता है । प्रमुखतः कवित्त और सवैया शैली का निरूपण देखते ही बनता है ।

1.33.5. हनुमान बाहुक

यह तुलसी की अंतिम रचना है । रचनाकाल संवत् 1650

के कुछ पूर्व माना जाता है । इसमें 44 छंद हैं । छंद चार प्रकार के हैं - छप्पय, झूलना, मत्तगयंद और घनाक्षरी । यह एक सम्यक ग्रंथ है । इसमें तुलसीदासजी ने अपनी बाहु पीड़ा और उसके शमन की प्रार्थना बहुत ही करूण स्वरों में हनुमानजी से की है । उनकी यह प्रार्थना बड़ी ही करूण और हृदय-द्रावक है । बाहुक की भाषा प्रौढ़ और परिष्कृत है । ब्रजभाषा का बहुत ही परिमार्जित और परिनिष्ठित रूप यहाँ दिखाई पड़ता है । शैली सरल एवं प्रवाहपूर्ण है ।

1.34. निष्कर्ष

निष्कर्षतः विविध तथ्यों, सामग्रियों के आधारपर तुलसी के जीवन-वृत के निर्माण का प्रयास किया गया है । यद्यपि ये सारे तथ्य सर्वथा स्वतंत्र और निरपेक्ष हैं, फिर भी तुलसी का एक प्रामाणिक जीवन-वृत्त तैयार करने में उनका निश्चित योगदान है । ये तथ्य एक दूसरे के पूरक नहीं हैं और कुछ तो वैज्ञानिकता की कसौटी पर भी खरा नहीं उतरतीं । फिर भी इन सामग्रियों का एक सामूहिक प्रभाव जीवन-वृत्त तैयार करने में अवश्य पड़ता है । तुलसी के जीवन वृत्त की ही तरह उनकी साहित्यिक कृतियों के संबंध में भी विद्वानों में पूर्ण मत्तैक्य नहीं है । इस संबंध में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है नागरी प्रचारिणी सभा । यद्यपि कृतियों के संख्या के बारे में आलोचकों में मतभेद है लेकिन उनके बारह कृतियों के प्रामाणिक पाठ उपलब्ध हो चुके हैं ।

1.35. सारांश

अंतः साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के आधार पर तुलसी के जीवन की रूपरेखा को आंकने का प्रयास किया गया है । तुलसीदास के जन्म-तिथि के संबंध में जो दो तिथियों को सबसे अधिक प्रामाणिक माना गया है वे हैं मूलगोसाईचरित में दी गई संवत् 1554 और डॉ. माताप्रसाद गुप्त एवं ग्रियर्सन द्वारा मान्य संवत् 1589 । उनकी जन्म. भूमि सोरो के शूकर-क्षेत्र के पास कोई स्थान हो सकता है,

जहाँ वे उत्पन्न हुए । जन्म लेते ही इनकी माता नहीं रही और पिता ने भी शीघ्र ही संसार त्याग दिया । इन्हें किसी ने आश्रय नहीं दिया । वे भटकते, माँगते-खाते, सूकर क्षेत्र सारो पहुँचे । वहाँ नरहरिदास को गुरू रूप में स्वीकार कर उनसे राम-कथा सुनी । उसके उपरांत सत्संग में ये चित्रकूट गए होंगे । उसके पास ही राजापुर में विवाहोपरांत रहने लगे । स्त्री के उपदेश के उपरांत उन्होंने वैराग्य अपनाया । वहाँ से काशी, अयोध्या और चित्रकूट आदि स्थानों में घुमते रहे और ज्ञानार्जन कर भक्ति-साधना में लीन रहे । इसके उपरांत वे काव्य रचना में जुट गए । 'रामचरितमानस' की रचना संत् 1631 में अयोध्या में हुई । वृद्धावस्था में इन्हें भयंकर बाहुपीड़ा का कष्ट सहना पड़ा । काशी में इन्होंने महामारी का हृदय-विदारक दृश्य देखा और क्षुब्ध होकर हनुमान, शंकर और राम से उद्धार की प्रार्थना की । संवत् 1680 में इन्होंने इहलोक लीला समाप्त की ।

'सरल सुभाव, न मन कुटिलाई' तत्व से अनुप्राणित तुलसी के व्यक्तित्व की छाप उनके कृतित्व पर स्पष्टतः दिखाई देती है । साहित्यिक क्षेत्र में पूर्ववर्ती एवं समकालीन सभी प्रकार की साहित्यिक और लोकसाहित्यिक काव्य शैलियों को अपनाया । यथा-वीरकाव्य पद्धति, सिद्धों-नाथों तथा निर्गुण-संत कवियों की साखी शैली, प्रेमाख्यान-प्रबंध-काव्यों की दोहा-चौपाई शैली, पद पद्धति, लोकगीत पद्धति, तथा कवित्त-सवैयों की शैली आदि । इसी प्रकार तुलसीदास ने प्रबंध और मुक्तक दोनों काव्यरूपों को अपनाया । उन्होंने महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं गीतीकाव्य लिखे । इन रचनाओं का प्रमुख लक्ष्य धार्मिक एवं सामाजिक ही जान पड़ता है । उन्होंने प्रत्येक वर्ग को अपनी रूचि के अनुकूल रामचरित सुलभ कराना चाहा । उन्होंने महिला वर्ग के लिए उत्सव-संस्कारों के अवसर पर रामचरित से संबंध रखने वाले गीत रामललानहछू, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल और गीतावली में प्रदान किये । कवित्व-रसिकों के लिए कवितावली बनाई, भक्तों और सन्यासियों

के लिए विनयपत्रिका, वैराग्यसंदीपनी जैसे ग्रंथ हैं, लोकनीति से प्रेम रखने वालों के लिए दोहावली है और गंभीर साहित्य एवं दार्शनिक रूचिवाले लोगों के लिए रामचरित मानस का प्रणयन किया । इस प्रकार समाज की आवश्यकता, अभिरूचि एवं लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने विविध ग्रंथों की रचना की थी ।

1.36. सम्भाव्य प्रश्न

1. आधुनिक अनुसंधानों के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर प्रकाश डालिए ।
2. अन्तः साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-संबंधी तथ्यों को रेखांकित कीजिए ।
3. स्वोक्तियों एवं अन्तः साक्ष्य के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए ।
4. अन्तः साक्ष्य, बहिर्साक्ष्य तथा विभिन्न शोधकर्ताओं के मतों का परीक्षण करते हुए गोस्वामी तुलसीदास की काव्य-कृतियों के नाम तथा उनका रचना क्रम निर्धारित कीजिए ।
5. आपकी दृष्टि में तुलसीदास की कौन-कौन सी कृतियाँ प्रामाणिक हैं ? प्रत्येक का संक्षेप में परिचय दीजिए ।
6. गोस्वामी तुलसीदास के ब्रज-भाषा में लिखे गए मुख्य ग्रंथों पर एक लेख लिखिए ।

NOTES

इकाई दो : तुलसीदास की समन्वय भावना

इकाई की रूपरेखा

2.0. प्रस्तावना

2.1. उद्देश्य

2.2. तुलसी युगीन परिस्थिति

2.3. तुलसी का लोकनायकत्व और समन्वयवादिता

2.4. समन्वय क्या है

2.5. तुलसीदास की समन्वय भावना

2.6. दार्शनिक समन्वय

- 2.6.1. द्वेत-अद्वैत का समन्वय
- 2.6.2. अद्वैतवाद एवं विशिष्टाद्वैतवाद का समन्वय
- 2.6.3. निर्गुण और सगुण का समन्वय
- 2.6.4. ज्ञान और भक्ति का समन्वय
- 2.6.5. विद्या तथा अविद्या माया का समन्वय
- 2.6.6. माया तथा प्रकृति का समन्वय
- 2.6.7. जगत् की सत्यता-असत्यता का समन्वय

2.7. मत-मतांतरों एवं संप्रदायों का समन्वय

- 2.7.1. वैष्णव एवं शाक्त मतों का समन्वय
- 2.7.2. शैव एवं वैष्णव मतों का समन्वय

2.7.3. रामावत संप्रदाय एवं पुष्टिमार्ग का समन्वय

2.7.4. नर और नारायण का समन्वय

2.8. सामाजिक समन्वय

2.8.1. राजा और प्रजा का समन्वय

2.8.2. मानस में व्यष्टि एवं समष्टि में समन्वय

2.8.3. ऋषि मुनिजन एवं साधारण जन का समन्वय

2.8.4. उच्चवर्ग एवं निम्नवर्ग का समन्वय

2.8.5. द्विज और शुद्र का समन्वय

2.8.6. राम व नाम का समन्वय

2.8.7. शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय

2.8.8. लोक परलोक समन्वय

2.9. राजनीतिक समन्वय

2.9.1. लोकमत एवं साधुमत का समन्वय

2.9.2. लोक एवं वेद का समन्वय

2.9.3. प्रजातंत्र एवं एकतंत्र का समन्वय

2.9.4. आदर्श और यथार्थ का समन्वय

2.10. भूतकाल के साथ वर्तमान एवं भविष्य का समन्वय

2.11. अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति में समन्वय

2.12. पारिवारिक समन्वय

2.13. सामाजिक आचार-विचार एवं रीति-नीति का समन्वय

2.14. साहित्यिक समन्वय

2.14.1. अवधी और ब्रज का समन्वय

2.14.2. पूर्वी पश्चिमी अवधी रूप समन्वय

2.14.3. जन प्रचलित व परिनिष्ठित ब्रज भाषा रूपों का समन्वय

2.14.4. शब्दार्थ समन्वय

2.14.5. गुण समन्वय

2.14.6. तत्सम्-तद्भव समन्वय

2.14.7. संस्कृत, अरबी व फारसी शब्दों का समन्वय

2.14.8. शैलीगत समन्वय

2.14.9. विभिन्न रामकथाओं का समन्वय

2.14.10. रचना-पद्धतियों में समन्वय

2.15. निष्कर्ष

2.16. सारांश

2.17. सम्भाव्य प्रश्न

VOP - 7 - 69

2.0. प्रस्तावना

परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाली वस्तुओं अथवा तत्वों का विरोध परिहार करके सामंजस्य स्थापित करने को समन्वय कहते हैं । गोस्वामीजी के युग में धर्म, भक्ति, दर्शन, समाज, साहित्य, परिवार आदि क्षेत्रों में एकरूपता का अभाव था । प्रस्तुत इकाई में समन्वय भावना के विविध तत्वों से पाठकों का परिचय करवाया गया है । पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, धार्मिक आदि चेतनाओं में गोस्वामीजी की समन्वय भावना प्रदर्शित कर आदर्श समाज की परिकल्पना का लेखा जोखा प्रस्तुत किया जा रहा है ।

2.1. उद्देश्य

गोस्वामी तुलसीदास रामराज्य के आकांक्षी हैं । उन्होंने एक ऐसे राज्य की परिकल्पना की है जिसमें समष्टि के हित की बात है, तथा समाज के कल्याण का आग्रह है । सामंतवादी प्रवृत्तियाँ उनके पास फटकने तक नहीं पाती हैं । तत्कालीन परिस्थितियों को देखकर भविष्य द्रष्टा तुलसी ने जिस लोक-कल्याणकारी रामराज्य की कल्पना की वह वस्तुतः एक बहुत बड़ा प्रगतिशील क़दम है । गोस्वामीजी के समन्व्यवादी दृष्टिकोण एवं लोकनायकत्व को उजागर कर इस तथ्य की पुष्टि की गई है कि भक्त कवि तुलसीदास ने सत्य ही समाज को एक स्थिर दिशा की तरफ ले जाने का प्रयत्न किया । प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य पाठकों को उनके विराट समन्वयवादी दृष्टिकोण से परिचय कराने का है ।

2.2. तुलसी युगीन परिस्थिति

जिस युग में तुलसीदास का अविर्भाव हुआ था उस युग में धर्म, समाज, राजनीति, साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों में वैषम्य एवं विभेद का बोलबाला था । धर्म के क्षेत्र में जहाँ हिन्दू-मुसलमानों में

वैमनस्य जड़ पकड़ रहा था वहीं दूसरी ओर शैव, शाक्त एवं वैष्णव मत के अनुयायियों में भी पारस्परिक द्वेष बढ़ रहा था । दक्षिण भारत में तो यह विद्वेष एवं वैमनस्य इतना बढ़ा कि शिवकांची एवं विष्णुकांची का निर्माण हो गया । उत्तरी भारत में भी धार्मिक संघर्ष का आधिक्य हो चला था । धार्मिक शांति के साथ सामाजिक शांति भी भंग हो रही थी । ब्राहम्ण और शुद्र एवं ऊँच-नीच के भेदभाव ने हिन्दू समाज की नींव को हिला दिया । वैमनस्य, वर्ग भेद एवं वर्ण विभेद का जाल हर कहीं बिछा था । यही दशा राजनीति एवं साहित्यिक क्षेत्र की भी थी । समूचे भारत वर्ष में अव्यवस्था, अराजकता, नृशंसता, विद्वेष, वैमनस्य, अशांति का वातावरण छाया रहा । इन परिस्थितियों को सुधारने में संत कवियों ने अधिक प्रयास किया और भावात्मक एकता को स्थापित करने का प्रयत्न भी किया । गोस्वामी तुलसीदास ने तत्कालीन परिस्थिति का बड़ी ही गहराई से अनुशीलन किया और समाज में व्याप्त वैषम्य को दूर करने के लिए समन्वय की प्रवृत्ति को प्रश्रय दिया ।

2.3. तुलसी का लोक नायकत्व और समन्वयवादिता

तुलसी ने सामाजिक, पारिवारिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, राजनैतिक, नैतिक और साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों में समन्वय से काम लिया और इन सभी क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करते हुए तत्कालीन जन जीवन में व्याप्त घोर अशांति, पाप, अनाचार, विषमता, अधार्मिकता आदि को दूर करने का बीड़ा उठाया । अपने इसी समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण तुलसी लोकनायक भी कहलाते हैं । जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार गौतम बुद्ध के पश्चात् तुलसी ही भारत का वह प्रथम व्यक्ति है जिसने जन-जीवन को सर्वाधिक प्रभावित किया और सबके हृदय में अपनी मान्यता स्थापित की ।

2.4. समन्वय क्या है

समन्वय का अर्थ है समझौता । कुछ स्वयं झुकना और कुछ

दूसरों को झुकने के लिए बाध्य करना । यह वह मार्ग है जहाँ हम दो भिन्न अथवा विरोधी तत्वों में चाहे वह धर्म का क्षेत्र हो, राजनीति का क्षेत्र हो, साहित्य का क्षेत्र हो या समाज का, एक ऐसे मार्ग का अनुसरण करने लगते है जहाँ हम अपनी मान्यताओं के साथ किसी दूसरे के मान्यताओं को स्वीकार करने लगते हैं । कहने का तात्पर्य है दो भिन्न धर्म, वर्ग, मत, सम्प्रदाय, चिंतन आदि को एक सूत्र में बाँधना, जिससे समाज में स्थिरता एवं एकरूपता आये । अन्य शब्दों में परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाली वस्तुओं अथवा तत्वों का विरोध परिहार करके सामंजस्य स्थापित करने को समन्वय कहते हैं ।

2.5. तुलसीदास की समन्वय भावना

लोकनायक तुलसी ने अपने अनुभव, सूक्ष्म अन्वेषण तथा गहन अनुशीलन के परिणाम स्वरूप, लोक-मंगल हेतु समन्वय साधना की ओर कदम बढ़ाया । गोस्वामीजी की वाणी में जीवन दर्शन के समस्त पक्षों का समन्वय प्राप्त होता है । इनके काव्य में ज्ञान और भक्ति का विविध दार्शनिक सिद्धान्तों यथा अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धद्वैत का, भक्ति के विविध रूपों सगुण भक्ति, निर्गुण भक्ति का तथा व्यक्ति और समाज का पूर्ण समन्वय उपलब्ध होता है । साथ ही पारिवारिक और साहित्यिक समन्वय का स्पष्ट रूप उनकी कृतियों में उपलब्ध होता है । उनके समन्वय भावना का परिचय नीचे दिया जा रहा है ।

2.6. दार्शनिक समन्वय

2.6.1. द्वैत-अद्वैत का समन्वय

तुलसीदास के समय में सबसे विवादित क्षेत्र दर्शन का था । अद्वैतवादी द्वैतवादी मध्वाचार्य के विरोधी थे और द्वैतवादी वैष्णव आचार्य शंकराचार्य के मायावाद तथा अद्वैतवाद के विरोधी थे । विशिष्टाद्वैतवादी अपना अलग ही राग अलाप रहे थे । गोस्वामीजी

ने राम भक्ति की श्रृंखला में इन तीनों को ही समन्वित कर दिया है । जो मान्यताएँ प्रत्येक में समान रूप से पायी जाती है, वही तुलसी को स्वीकार्य है । जहाँ परस्पर विरोध है वहाँ उन्होंने दोनों रूपों का उल्लेख किया है । अद्वैतवादी माया को मिथ्या मानते हैं और द्वैतवादी सत्य मानते हैं । गोस्वामीजी ने माया के दो रूपों की कल्पना की विद्या माया और अविद्या माया । द्वैतवादियों के अनुसार विद्या माया को सत्य माना और अद्वैतवादियों की तरह उन्होंने अविद्या माया को असत्य माना। जीव के सभी पाप राम कृपा से नष्ट हो जाते हैं । ईश्वर एक है वही विविध रूपों में दिखाई देता है, वैसे तो संसार असत्य (अद्वैत) है, किन्तु भगवान की लीला-स्थली होने के कारण सत्य (द्वैत) है ।

2.6.2. अद्वैतवाद एवं विशिष्टाद्वैतवाद का समन्वय

तुलसी से पूर्व सभी भक्त आचार्यों ने शंकर के अद्वैतवाद का खण्डन कर अपने-अपने मत की स्थापना की । इसलिए रामानुजाचार्य ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का विरोध करके विशिष्टाद्वैतवाद का प्रचार किया, मध्वाचार्य ने द्वैतवाद का प्रचार किया और निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैतवाद का प्रचार किया था । गोस्वामीजी रामानुजाचार्य के अनुयायी होने के कारण विशिष्टाद्वैत को मानते थे । इसी हेतु तुलसी ने जीव को ईश्वर का अंश कहकर ईश्वर की ही भाँति उसे चेतन, अमल, अविनाशी आदि कहा है । ब्रह्म को सगुण, निर्गुण अरूप, अलख आदि कहकर विशिष्टता प्रदान करते हैं । तथा विशिष्टाद्वैतवादियों की भाँति संसार को नित्य शाश्वत एवं अविनाशी घोषित करते हैं यथा 'पल्लवत फूलत नवल नित संसार-विटप नमामहे' तथा 'जौ जग मृषाताप-त्रय अनुभव होत कहहु केहि लेखें ।' साथ ही अन्य स्थलों पर तुलसी ने शंकराचार्य के अनुसार ही ब्रह्म को अज, स्वतंत्र, सर्वज्ञ, सत्य आदि कहा है । जीव को ब्रह्म स्वरूप और जगत् को मिथ्या बताया है । यथा "सोई जानइ जेहि देहु जनाई । जानत तुम्हहि तुम्हइ होई जाई ।।"

अविद्या-माया का निरूपण भी शंकर की ही भाँति किया है - 'समुझें मिथ्या सोहि' । इस प्रकार तुलसी के विचारों में अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद का भी समन्वय मिलता है ।

2.6.3. निर्गुण और सगुण का समन्वय

तुलसी के पूर्ववर्ती भक्तों में ब्रह्म के निर्गुण एवं सगुण स्वरूप पर संघर्ष चला आ रहा था । ज्ञानमार्गी ब्रह्म को निर्गुण मानते थे और पुष्टिमार्ग के समर्थक अथवा भक्तिमार्गीय ब्रह्म को सगुण मानते थे । तुलसीदास ने इन दोनों के विरोध को समाप्त करने के लिए सगुण तथा निर्गुण दोनों का ही समन्वय कर दिया । उन्होंने ब्रह्म को निर्गुण सगुण दोनों ही माना है । ब्रह्म राम ही है । राम एक हैं । वही निर्गुण और सगुण, निराकार और साकार, अव्यक्त और व्यक्त, गुणातीत और गुणाश्रय है -

''एक दारूगत देखिअ एकू । पावक सम जुग ब्रह्म अनेकू ।
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे । जल हिम उपल विलग नहीं जैसे ।।

निर्गुन राम ही भक्तों के प्रेम के वशीभूत होकर साकार रूप धारण करते हैं - अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सा होई ।। गोस्वामीजी ने बारम्बार राम की निर्गुण-सगुण रूप में स्तुति की है -

''जय सगुन-निर्गुन रूप, रूप अनूप भूप सिरोमने ।''

'अगुन और सगुन' में कोई भेद नहीं है । दोनो ही ब्रह्म के दो स्वरूप हैं । अतः उनमें विरोध कैसा ? राम तो आनादि, अकथनीय एवं अगाध हैं - ''अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । अवध अगाध अनादि अरूपा ।'' अपनी-अपनी प्रीति के अनुसार भक्त भगवान की आराधना करता है । लेकिन गोस्वामीजी के अनुसार सगुण रूप की उपासना सहज है । अतः सगुण ईश्वर-राम की भक्ति ही सर्वोपरि है क्यों कि सगुण राम भक्त की रक्षा के लिए सदैव प्रस्तुत रहता है ।

2.6.4. ज्ञान और भक्ति का समन्वय

तुलसी के समय में ज्ञानियों एवं भक्तों में बड़ा विवाद चलता था, जिसके फलस्वरूप ज्ञानीजन भक्तों को तुच्छ मानकर स्वयं को श्रेष्ठ मानते थे । ज्ञान की श्रेष्ठता की ओर संकेत करते हुए तुलसी कहते हैं - 'कहहिं संत मुनि बेद पुराना, नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना' । तुलसी ने भक्ति के लिए ज्ञान की आवश्यकता पर बल दिया है यद्यपि ज्ञान को तुलसी 'ग्यान कै पंथ कृपान कै धारा' मानते हैं । ज्ञान-मार्ग की कठिनाइयों की ओर संकेत कर भक्ति को 'भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी' कहकर भक्ति को ज्ञान की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ सिद्ध किया है । साथ ही तुलसी ने 'भगतिहिं ग्यानहिं नहिं कछु भेदा । उभय हरहिं भव संभव खेदा' कहकर दोनों में समन्वय लाने का प्रयत्न किया है ।

2.6.5. विद्या तथा अविद्या माया का समन्वय

अद्वैतवादी माया को मिथ्या तथा असत्य मानते हैं, जबकि वैष्णव आचार्य माया को सत्य मानते हैं । गोस्वामीजी ने दोनों के समन्वित सिद्धांत को ग्रहण किया है । माया सत्य भी है और असत्य भी है । उनके अनुसार माया के दो रूप हैं - विद्या माया और अविद्या माया । अविद्या माया अद्वैतवादियों की माया है जो मोहकारिणी है । उसके चक्कर में फँसकर जीवन नाना प्रकार के नाच नाचता है तथा विभिन्न योनियों में भटकता रहता है । यह माया मिथ्या है, असत्य है । इससे छुटकारा राम की कृपा से हो सकता है । विद्या माया जगत् की रचना करती है तथा भक्तों का कल्याण भी । यह माया वैष्णव भक्ति के अनुरूप है । यह राम की अभिन्न शक्ति है । राम के भक्त का कल्याण तथा रक्षा करती है विद्या माया ।

2.6.6. माया तथा प्रकृति का समन्वय

सांख्य योग के अनुसार प्रकृति सृष्टि का कारण है तथा

स्थूल जगत् उसी का रूप है । माया मिथ्या है । अतः जगत् भी उसके द्वारा रचित होने के कारण अद्वैतवादियों के अनुसार असत्य है, जबकि वैष्णव आचार्यों के अनुसार जगत् सत्य है, वह शक्ति माया द्वारा रचित है । सृष्टि प्रक्रिया में तुलसीदास ने वैष्णव वेदान्त की माया तथा सांख्य-योग की प्रकृति का समन्वय किया । उन्होंने प्रकृति को राम के अधीन माना तथा माया से अभिन्न सिद्ध किया ।

2.6.7. जगत की सत्यता-असत्यता का समन्वय

सांख्य योग, वैष्णव वेदान्त, आगम तथा पाशुपत में जगत् की सत्यता स्वीकार की गई है जबकि शंकराचार्य के मतानुयायियों द्वारा जगत् की असत्यता । तुलसीदास जगत् को सत्य भी मानते हैं और असत्य भी । राम से जो विमुख हैं उनके लिए जगत् असत्य है । जगत् में लिप्त होना जीवन को व्यर्थ खोना है क्योंकि संसार झूठा है । जैसे सीप में चाँदी का आभास होता है तदनुसार जगत् में सत्यता का आभास मात्र होता है -

'रजत सीप महुँ भास जिमि, जथा भानुकर वारि ।'

राम जगत् में व्याप्त हैं । उनके भक्तों को जगत् असत्य नहीं लगता । राम तो 'व्यापक विश्वरूप भगवान' हैं, जगत् राम का अंश है, अतः वह सत्य है । राम से अभिन्न जगत् मिथ्या नहीं हो सकता । जीव को ब्रह्म के अधीन तथा परमात्मा से भिन्न भी माना गया है, और ईश्वर का अंग होने के कारण अविनाशी भी । गोस्वामीजी ने जीवन का भी समन्वित रूप ग्रहण किया । स्वरूप की दृष्टि से जीवन अभिन्न है तथा ईश्वर की तरह ही चेतन एवं आनंदमय है । लेकिन माया का वशवर्ती है । माया से मुक्त होने पर ईश्वर के स्वरूप को तो प्राप्त कर लेता है पर ईश्वर की सर्वव्यापकता तथा सर्वशक्तिमत्ता नहीं आती -

'ईश्वर अंस जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासि ।'

2.7. मत-मतान्तरों एवं सम्प्रदायों का समन्वय

2.7.1. वैष्णव एवं शाक्त मतों का समन्वय

शिव और विष्णु के भक्तों में जिस तरह पारस्परिक वैमनस्य एवं विद्वेष फैला हुआ था, उसी तरह वैष्णवों एवं शाक्तों में भी उस समय घोर संघर्ष चलता रहता था । इसी कारण कबीर ने 'वैष्णव की छपरी भली, नहिं साकत कौ गाँव' कहकर शाक्तों की अपेक्षा वैष्णवों को श्रेष्ठता प्रदान की थी । परन्तु तुलसी ने शैव एवं वैष्णवों की भाँति शाक्तों एवं वैष्णवों के संघर्ष एवं वैमनस्य को दूर करते हुए 'शक्ति' की उपासना की और सीता को ब्रह्म राम की शक्ति बताकर तथा क्लेशहारिणी सर्वश्रेयस्करी आदि कहकर उनकी वंदना की । सीता के द्वारा शक्तिरूपा पार्वती की स्तुति करायी -

नहिं तव आदि मध्य अवसाना । अमित प्रभाव बेद नहिं जाना ।।
भव भव विभव पराभव कारिनि । बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि ।।

उक्त कथन द्वारा शाक्त-मत में वर्णित शक्ति को संसार की सृष्टि और पालन करने वाली बताकर तथा राम-कथा की प्रथम श्रोत्री के रूप में पार्वती का चित्रण करके उस शक्ति के प्रति पूज्य-भाव प्रकट करते हुए तुलसी ने शाक्तों एवं वैष्णवों में भी समन्वय स्थापित किया ।

2.7.2. शैव एवं वैष्णव मतों का समन्वय

भारतीय विचारधारा के अनुसार त्रिदेव की कल्पना बड़ी महत्वपूर्ण मानी गई है । इनके अनुसार ब्रह्मा विष्णु और शिव - तीन प्रमुख देव माने जाते हैं, जिनमें ब्रह्मा सृष्टि के उत्पादक हैं, विष्णु सृष्टि के पालक और शिव संहारक हैं । इसी आधार पर विष्णु को अपना सर्वस्व मानने वाले भक्त 'वैष्णव' कहलाते हैं और शिव को अपना सर्वस्व मानने वाले शैव कहलाते हैं । कालांतर में

वैष्णव एवं शैव मतों में विष्णु और शिव को ही सृष्टि का उत्पादक, पालक एवं संहारक कहकर सर्वशक्तिमान माना जाने लगा और फिर आपस में विद्वेष भी फैल गया, जिसके परिणाम स्वरूप वैष्णव शैवों को तुच्छ एवं हेय दृष्टि से देखने लगे और शैव-भक्त वैष्णवों से घृणा करने लगे । तुलसी के समय में यह विद्वेष अपनी चरम सीमा पर पहुँचा हुआ था । अतः तुलसी ने दोनों मतों में समन्वय स्थापित करने के लिए एक ओर तो शिव के मुँह से 'सोइ मम इष्ट देव रघुवीरा । सेवत जाहि सदा मुनिधीरा ।' कहलवाकर शिव को राम का उपासक सिद्ध कर दिया और दूसरी ओर राम के मुख से 'संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास । ते नर करहिं कलाप भरि घोर नरक महुँ बास' कहलवाकर राम को शिव का अनन्य प्रेमी सिद्ध कर दिया है । तुलसी ने सेतु का निर्माण होने पर राम के द्वारा शिव की प्रतिष्ठा एवं पूजा-अर्चना कराके राम को शिव का अनन्य भक्त सिद्ध कर दिया है ।

2.7.3. रामावत सम्प्रदाय एवं पुष्टिमार्ग का समन्वय

तुलसी रामानन्द के शिष्य सम्प्रदाय में नरहरि के शिष्य होने के कारण रामावत सम्प्रदाय में ही दीक्षित हुए । रामावत सम्प्रदाय में राम को ही परब्रह्म माना गया है तथा ब्रह्म के पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतार नामक पाँच रूप माने गये हैं । इन्हीं रूपों में इनकी आराधना एवं अर्चना होती है । तुलसी ने उक्त रूपों के अनुकूल ही भगवान राम का चित्रण किया है । इसके साथ ही पुष्टिमार्ग के अनुसार ब्रह्म की कृपा व अनुग्रह को ही सर्वोपरि बताया है और सिद्ध किया है कि कितनी ही पूजा, अर्चना एवं उपासना की जाये, किन्तु भगवान की कृपा बिना कभी कुछ नहीं होता । भग्वान की कृपा से ही भगवत् साक्षात्कार होता है । साथ ही बिना भगवान की कृपा के राम-भक्ति भी प्राप्त नहीं होती । इसलिए तुलसी लिखते हैं -

राम भगति मति उर बस जाके ।
दुख लवलेस न सपने हुँ ताके ।।

चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं । जे मनि लागि सुजतन कराहीं ।।
सो मनि जदपि प्रकट जग अहई । रामकृपा बिनु नहिं कोउ लहई ।।

राम की भक्ति में राम की कृपा की महत्ता प्रदर्शित करते हुए तुलसी ने रामावत-सम्प्रदाय एवं पुष्टिमार्गीय मत में सुन्दर समन्वय किया है ।

2.7.4. नर और नारायण का समन्वय

तुलसी से पूर्व राम का महत्व दशरथ के पुत्र के रूप में था । उन्हें कोई भी ब्रह्म, अज एवं अविनाशी नहीं मानता था । इसीलिए कबीर ने 'दशरथ' सुत तिहुँ लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना' कहकर राम के दशरथ-पुत्र-रूप को ब्रह्म से पृथक कहा है । तुलसी ने 'भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी' कहकर ब्रह्म को कौशल्या पुत्र या दशरथ-सुत के रूप में अवतरित दिखाकर अपने इष्टदेव को साधारण मानव या नर से ऊपर उठाते हुए नारायण के ब्रह्म-पद पर आसीन कर दिया है । इसी कारण तुलसी के राम अवतारी पुरूष होकर भी अज, अरूप एवं अचल हैं, सगुण होकर भी निर्गुण एवं निर्विकार हैं, अनिकेत होकर भी अवधवासी हैं, शील एवं सौंदर्य-युक्त होकर भी अखण्ड, अनन्त एवं व्यापक हैं । तुलसी ने राम के रूप में नर और नारायण का अथवा मानव और ब्रह्म का सुंदर समन्वय किया है ।

2.8. सामाजिक समन्वय

2.8.1. राजा और प्रजा का समन्वय

समाज के कल्याण के लिए शासक व प्रजा का समन्वय आवश्यक है । तुलसी राजा और प्रजा के बीच में विद्यामान वैषम्य से परिचित हैं । उसके भीषण परिणाम को दूर करने हेतु वे

समन्वय तत्व का प्रश्रय लेते हैं । मानस में राजा और प्रजा के समन्वय को प्रमुखता देते हुए उनके मधुर संबंधों की आवश्यकता प्रतिपादित करते हैं । आदर्श राम राज्य की परिकल्पना में इसी समन्वय तत्व का समुद्घाटन हुआ है । शासक में गोस्वामी आदर्श चरित्र, शक्ति एवं शील की आवश्यकता निरूपित करते हैं । आदर्श प्रजा एवं आदर्श राजा के स्वरूप प्रस्तुत कर मानस में गोस्वामीजी उनके मधुर संबंधों का उत्कर्ष दिखाते हैं ।

राजा को प्रजा से कहीं अधिक श्रेष्ठ, उन्नत, महान एवं ईश्वर का रूप मानने के कारण राजा व प्रजा के बीच में वैषम्य की ज्वाला उत्पन्न होती है । अतः राष्ट्र एवं समाज के स्नेहपूर्ण अस्तित्व के लिए उनका समन्वय आवश्यक है । तुलसी 'रामचरितमानस' में राजा और प्रजा के कर्तव्य निर्धारित करते हुए दोनों के सम्यक् रूप प्रस्तुत करते हैं -

सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिब होई ।

अर्थात् राजा को मुख के समान और प्रजा को हाथ, पाँव एवं नेत्र के समान हितैषी होना चाहिए । इतना ही नहीं, उन्होंने मुखिया को मुँह के समान माना है -

मुखिया मुख सो चाहिए खान-पान कहु एक ।
पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक ।।

अर्थात् वपु में जिस तरह मुख तथा अन्य अंगों का समन्वय रहता है, तद्वत् राजा और प्रजा का समन्वय आवश्यक है ।

2.8.2. मानस में व्यष्टि एवं समष्टि में समन्वय

मानस में व्यष्टि व समष्टि का समन्वय दिखाकर गोस्वामी आदर्श समाज का चित्र प्रस्तुत करते हैं । मानस के राम के प्रताप से सभी नागरिक एक सूत्र में आबद्ध होते हैं - राम प्रताप विषमता खोई । बैर न कर काहू संग कोई ।

2.8.3. ऋषि मुनि जन एवं साधारण जन का समन्वय

तुलसी निम्न जातियों के जीवन-स्तर के उत्थान की कामना करते हैं । धनहीन, संस्कृति रहित और अस्पृश्य कहलाने वालों के प्रति गोस्वामी प्रेम व साम्य की भावना प्रदर्शित करते हैं -

पन्नगरि असि नीति-श्रुति संमत सज्जन किहहिं ।
अति नीचहु सन प्रीति-करिअ जानि निज परम हित ।।

तुलसीदास के रामचन्द्र वनगमन के समय मुनि पत्नी अहिल्या एवं शुद्रा शबरी से समान प्रेम व आदर के साथ मिलते हैं क्योंकि उनके भक्ति भाव मुख्य है न कि जाति ।

2.8.4. उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग का समन्वय

राजकुलोद्भाव राम तुच्छ वानर, भालू, रीछ, विभीषण, राक्षस आदि से प्रेमालिंगन करते हुए उच्च वर्ग एवं निम्नवर्ग में सुंदर समन्वय स्थापित करते हैं । यह वर्ग साम्य मानस की अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धि है । तुलसीदास साम्यवाद के पोषक हैं । अस्पृश्य कहलाने वाले कोल-भील, किरात एवं निषाद भी रामभक्ति के कारण पुनीत हो जाते हैं । गोस्वामी वर्ण धर्म को मानते हुए भी ब्राह्मण व शुद्रों को समान स्थान देते हैं । महा क्षेत्रिय राम, भरत एवं विप्रवर वशिष्ठ मुनि निषाद व केवट को समान रूप से गले लगाते हैं -

'भेटत भरतु ताहि अति प्रीति, लोग सिहाहि प्रेम कै रीति ।
तेहि भरि राम लघु भ्राता । मिलत पुलक परिपूरित गाता ।।

2.8.5. द्विज और शुद्र का समन्वय

मानसकार के युग में जात-पाँत का भेद-भाव उग्र रूप में संव्याप्त था । ऊँची जाति के लोग निम्न वर्ण के लोगों से घृणा करते थे । तुलसी इस सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए अपने काव्य में विप्रवर वशिष्ट को निम्न जाति में उत्पन्न निषाद राज

से भेंट करते हुए दिखाकर जातियों में समन्वय स्थापित करते हैं । महर्षि वशिष्ठ केवट को हृदय से लगाते हैं -

'प्रेम पुलकि केवट कहि नामू । कीन्ह दूरि से दण्ड प्रणामू ।
राम सखा रिषि बरबस भेटा । जनु महि लुटत सनेह समेटा ।।

2.8.6. राम व नाम का समन्वय

राम का नाम यदि मन में अंकित हो तो सभी कष्ट क्षण में दूर हो जाते हैं । राम की तरह उनका नाम भी शक्तिशाली है । राम व रामनाम की महत्ता समन्वय चेतना से युक्त है । समाज के प्रदीप्तीकरण एवं उदात्तीकरण के लिए तुलसीदास रामनाम मणिदीप प्रदान करते हैं -

राम नाम मनि दीप धरू-जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ-जौं चाहसि उजियार ।।

2.8.7. शील शक्ति और सौंदर्य का समन्वय

तुलसीदास राम के चरित्र में सामाजिक मर्यादाओं के साथ शक्ति, शील और सौंदर्य तीनों का ही समन्वय करते हैं । शील के उत्कर्ष की दीप्ति से मानस की प्रत्येक पंक्ति अतीव भास्वर बन पायी है । मानस प्रेम, भक्ति एवं सदाचार की त्रिवेणी है । सीता, कौसल्या, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न हनुमानजी, विभीषण, केवट, जटायु आदि चरित्रों में शक्ति, शील एवं सौंदर्य का समन्वय हुआ है । शक्ति, शील एवं सौंदर्य के समन्वय से गोस्वामीजी समाज के सम्मुख आदर्श् चरित्रों के चित्र प्रस्तुत करते हैं।

2.8.8. लोक परलोक समन्वय

तुलसी से पूर्व राम का चरित्रांकन अधिकतः दशरथ पुत्र के रूप में हुआ है । तुलसीदास उनके परब्रह्म रूप का समुद्घाटन कर लोक और परलोक का समन्वय करते हैं । तुलसी के राम अवतारी पुरूष होकर भी अज, अरूप एवं अचल हैं । सगुण होकर भी निर्गुण निर्विकार हैं । दुष्ट शक्तियों से भयभीत न होकर राम

रक्षा की आस्था मन में लेकर आगे बढ़ने की प्रेरणा समाज को देने हेतु गोस्वामीजी लोक-परलोक समन्वय प्रस्तुत करते हैं । राम के चरित्र में लोकपालक एवं लोकरंजक रूपों का समन्वय हुआ है । मानस में स्वर्ग और धरती, अवध और वैकुण्ठ, लोक और परलोक नरता व सुरता आदि का समन्वय हुआ है ।

2.9. राजनीतिक समन्वय

2.9.1. लोकमत एवं साधुमत का समन्वय

रामकाज कोरी राजनीति से नहीं चल सकता । लोकमत और साधुमत के समन्वय से शासन सुभद्र बनता है -

'करिय साधुमत लोकमत नृप नय निगम बिचारि ।'

लोकमत की अवहेलना कहीं नहीं की गई है । आदर्श राजा के स्वरूप का भी मानस में चित्रण है ।

2.9.2. लोक एवं वेद का समन्वय

गोस्वामीजी का कहना है कि शासन करने के लिए केवल नृप'नीति का ही अपेक्षा नहीं करनी चाहिए वरन् उसमें दो वस्तुएँ और भी सम्मिलित होनी चाहिए । उनके शब्दों में उन्हें 'लोक' और 'वेद' की संज्ञा दी जा सकती है । वस्तुतः यह दोनों तत्व राजनीति में संतुलन एवं अंकुश की दृष्टि से रखे गए हैं । योग्य शासक को न केवल नृप नीति में ही निष्णात होना चाहिए वरन् 'लोक एवं वेद' में भी पारंगत होना चाहिए । इसके लिए उसे योग्यतम कुल-गुरू एवं मंत्री का सहयोग भी अपेक्षित है । मानस के अंतर्गत हम देखते हैं कि चक्रवर्ती राजा दशरथ राज्य शक्ति के अन्यतम उपभोक्ता होते हुए भी राम के युवराजत्व की समस्या को सर्वप्रथम राजपुरोहित वशिष्ठ के ही निकट लेकर उपस्थित होते हैं । तदुपरांत उनका अनुमोदन प्राप्त करके वे मंत्री सुमंत एवं अन्य राज कर्मचारियों को भी इससे अवगत कराते हैं । अतः स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास राजनीति के अंतर्गत साधु एवं शास्त्रमत को ही

महत्त्वपूर्ण मानने वाले थे । तथापि लोकमत को भी इन्होंने अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार किया था ।

2.9.3. प्रजातंत्र एवं एकतंत्र का समन्वय

तुलसीदास ने रामराज्य वर्णन के माध्यम से प्रजातंत्र एवं एकतंत्र इन दोनों शासन-व्यवस्थाओं का समन्वित रूप प्रस्तुत किया । भरत राम से अयोध्या लौट आने की विनती करते हैं । परन्तु राम राज्यारोहण के पूर्व पिता की आज्ञा का पालन करना चाहते हैं । भरत अपनी बात सभा के सम्मुख रखते हैं परन्तु अंतिम निर्णय प्रजाजन के ऊपर छोड़ देते हैं । गुरू वशिष्ठ कहते हैं - 'बोले मुनिवर समय समाना । सुनहु सभासद भरत सुजाना ।' नंदिग्राम में बैठकर राज-काज प्रारंभ करने के पहले भी भरत प्रजाजन की अनुमति प्राप्त कर लेते हैं -

परिजन पुरजन प्रजा बोलाए । समाधानु करि सुबस बसाए ।

2.9.4. आदर्श और यथार्थ का समन्वय

तुलसी ने आदर्श चरित्रों की योजना द्वारा विपन्न मानव को सही मार्ग दिखाने का उपक्रम किया । वे राम के उच्च आदर्श को प्रस्तुत कर रामराज्य की स्थापना करने के लिए उद्यत हैं । राम, भरत, सीता हनुमान जैसे शुद्ध, उदार एवं जनहित की भावना से ओतप्रोत होकर आदर्श की स्थापना करते है वहीं दशरथ, कैकेयी आदि पात्रों के द्वारा मानवीय दुर्बलताओं, अभावों व अतृप्त अभिलाषाओं का दिग्दर्शन् कराने का प्रयास किया है । कैकेयी एवं दशरथ के चरित्र यथार्थवाद की भूमि पर अंकित हैं ।

2.10. भूतकाल के साथ वर्तमान एवं भविष्य का समन्वय

रामचरितमानस में अतीत की गौरव गाथा का चित्रण है । राम की कहानी है । इस कृति में वर्तमान की दुरावस्था की ओर भी इंगित किया गया है । उत्तरकाण्ड में कलि का विकराल रूप

उपस्थित है । रामराज्य वर्णन में इस दशा का परिष्कार कर उसका संबंध भविष्य से जोडा गया है ।

2.11. अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति में समन्वय

रामचरित मानस का प्रकृति वर्णन अद्वितीय है । मानव प्रकृति का ज्ञान तुलसी से अधिक किसी कवि को नहीं था । मानस में प्रकृति वर्णन उद्दीपन विभाव के रूप में हुआ है । ऋतुओं के वर्णन में राम की विरह व्यथा के जो चित्र प्रस्तुत किये गये हैं उनमें स्वाभाविकता है सजीवता है । मानव जीवन की जटिलताओं के चित्रण में प्रकृति वर्णन के जो चित्र उपस्थित किये गए हैं वे अन्तः प्रकृति की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अभिव्यंजना को दर्शाते हैं । ऐसा कर तुलसी ने अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति में सामंजस्य स्थापित किया है ।

2.12. पारिवारिक समन्वय

तुलसी ने धर्म एवं समाज के क्षेत्र में ही समन्वय स्थापित नहीं किया, अपितु, पारिवारिक क्षेत्र के अंतर्गत पिता और पुत्र में, पति पत्नी में, सास और पुत्रवधु में, भाई-भाई, स्वामी और अनुचर में समन्वय स्थापित किया है । तुलसी ने पारिवारिक जीवन में समन्वय स्थापित करते हुए एक आदर्श परिवार की प्रतिष्ठा की है । सीता अपनी सासों की सेवा करती है । सासके प्रति सदा वे विनयशील भावना दिखाती है । अयोध्याकाण्ड में भ्रातृ प्रेम के आदर्श चित्र अंकित हुए हैं । समाज की सुभद्रता एवं सुख के आधार हैं - प्रेम, त्याग और बलिदान । समाज की इकाई परिवार इन्हीं तत्वों से सुखी बन सकता है । भरत का त्याग सराहनीय है -

किएँ जाहिं छाया सुखद बहत बर बात ।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भारतहि जात ।।

2.13. सामाजिक आचार-विचार एवं रीति-नीति का समन्वय

सामाजिक रीतिनीति तथा आचार विचार के वर्णन में तुलसी भारतीय संस्कृति के तत्वों का दिग्दर्शन कराते हैं । वेष-भूषा में मुसलमान संस्कृति का प्रभाव है । राम लक्ष्मण सिर पर चौकोनी टोपी पहनते हैं । बालकाण्ड में विवाह विधि का चित्रण शिव-पार्वती तथा सीता-राम के विवाह प्रसंगों में है । विवाह-पद्धति में तुलसी ने सामाजिक आचार-विचार का समन्वय प्रस्तुत किया है ।

2.14. साहित्यिक समन्वय

2.14.1. अवधी और ब्रज का समन्वय

तुलसी ने अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं का समन्वय करके रामचरितमानस की रचना की है । पार्वतीमंगल व जानकीमंगल अवधी में रचित हैं । विनयपत्रिका, गीतावली, श्रीकृष्णगीतावली व कवितावली ब्रजभाषा में रचित हैं । 'मानस' और विनयपत्रिका के स्तोत्रों में संस्कृत-गर्भित हिन्दी का प्रयोग कर हिन्दी और संस्कृत का सुंदर समन्वय किया गया है ।

2.14.2. पूर्वी पश्चिमी अवधी रूप समन्वय

रामचरितमानस की भाषा में पूर्वी अवधी और पश्चिमी अवधी का समन्वय हुआ है । पूर्वी अवधी में पार्वती मंगल, जानकी मंगल और रामलला नहछू प्रणीत हैं ।

2.14.3. जन प्रचलित व परिनिष्ठित ब्रज भाषा रूपों का समन्वय

तुलसी के पूर्व रचित काव्यों में भाषा का परिनिष्ठित रूप नहीं मिलता । इस अभाव की पूर्ति तुलसीदास की महत् साधना का फल है । चलती हुई ब्रज भाषा में कवितावली प्रणीत हुई हैं तो

साहित्यिक एवं संस्कृत निष्ठ परिनिष्ठित ब्रजभाषा मे विनय पत्रिका, गीतावली एवं श्री कृष्ण गीतावली रचित हैं ।

2.14.4. शब्दार्थ समन्वय

शब्दों के प्रयोग में भी गोस्वामीजी समाज सापेक्ष दृष्टि प्रदर्शित करते हैं, केवट-प्रसंग में 'मानुष' शब्द का प्रयोग अतीव अर्थ पूर्ण है ।

चरण कमल-रज कह सब कहई ।
मानुष करनि मूरि कछु अहई ।।

सेवा भाव द्वारा ही मनुष्य मनुष्यता के ऊँचे आसन पर चढ़ता है । 'मानुष' में मनुष्यता निहित है । भगवत्कृपा से ही मानवता-प्राप्ति संभव है । शब्द और अर्थ का समन्वय मानस में सर्वत्र उपलब्ध है ।

2.14.5. गुण समन्वय

तुलसी जी भक्ति-निवेदन व श्रृंगार परक वर्णनों में कोमलकांत पदावली का प्रयोग करते हैं यथा -

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि ।
कहत लखन सन राम हृदयँ गुनि ।।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्हीं
मनसा बिस्व विजय कहँ कीन्हीं ।।

रस के निर्वाह के समय इनके द्वारा ध्वन्यात्मक शब्द प्रयुक्त हैं -

'जगमय मगन भई बानी । लखन बाहुबल तेज बखानी ।।'' प्रसाद, माधुर्य और ओज के प्रयोग के औचित्य से गोस्वामी जी पाठक को काव्यानंद की दिशा में प्रवृत करानें में सफल हुए हैं । गुण-समन्वय से उक्ति सहृदय के अंतराल तक पहुँचती है ।

2.14.6. तत्सम-तद्भव समन्वय

गोस्वामीजी स्वदेशी तथा विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग

अतीव चातुर्य से करते हैं । संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों के प्रयोग से वे अभिव्यक्ति को सक्षम बनाते हैं । समाज में प्रचलित तद्भव रूपों का प्रयोग तुलसीदास जी की समाज सापेक्ष दृष्टि का परिचायक है । 'लक्ष्मण' शब्द का तद्भव रूप 'लखन' व सीता शब्द का तद्भव रूप 'सिया' जनता के हृदय के अत्यंत समीप हैं ।

2.14.8. संस्कृत, अरबी व फारसी शब्दों का समन्वय

संस्कृत, अरबी और फारसी शब्दों को भी तुलसीदास निःसंकोच ग्रहण करते हैं । मानस में हजार से भी अधिक अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है । हिन्दू- मुस्लिम-एकता की दृष्टि से गोस्वामी ने इन शब्दों को अपनाया है । यह समाज के एकीकरण के लिए अत्यंत आवश्यक है । बादशाह, गरीब-नेवाज़ आदि शब्दों का प्रयोग तुलसी को सामासिक संस्कृति के प्रतिष्ठापक सिद्ध करता है ।

2.14.8. शैलीगत समन्वय

लम्बी-लम्बी समासांत पदावली-युक्त क्लिष्ट रचना-शैली तथा सरल सुबोध शैली को अपनाते हुए 'विनयपत्रिका' में शैलीगम समन्वय को अपनाया है । मानस में विवरणात्मक कथा रूप के साथ-साथ राम एवं शिव-संबंधी स्तोत्रों की रचना करके कथा-शैली एवं स्तोत्र-शैली का भी समन्वय किया है, जिसमें पौराणिक एवं ऐतिहासिक शैली का भी समन्वय दृष्टिगोचर होता है ।

2.14.9. विभिन्न राम कथाओं का समन्वय

तुलसी ने विभिन्न ग्रंथों से राम कथा को लेकर ऐसे सुंदर कथा-संबंधी समन्वय की स्थापना की है, जो 'निगमागम सम्मत' होकर भी रामचरितमानस सर्वथा अद्भुत, अलौकिक एवं मौलिक दिखाई देता है ।

2.14.10. रचना-पद्धतियों में समन्वय

तुलसी ने दोहा-चोपाई पद्धति पर 'मानस' लिखकर, पद पद्धति पर 'विनयपत्रिका' 'गीतावली' और 'कृष्णगीतावली' लिखकर, दोहा-पद्धति पर 'दोहावली' लिखकर, कवित्त-सवैया-छप्पय पद्धति पर कवितावली लिखकर, बरवै पद्धति पर 'बरवै-रामायण लिखकर तथा लोकगीत-पद्धति पर सोहर छंद में 'रामललानहछू' लिखकर तत्कालीन साहित्य में प्रचलित सभी रचना-पद्धतियों में भी सुन्दर समन्वय स्थापित किया है ।

2.15. निष्कर्ष

गोस्वामी तुलसीदास अपने समाज की परिस्थितियों पर अपने समय की आवश्यकताओं के प्रति पूर्णतः जागरूक थे । उनका दृष्टिकोण एक निर्माता का दृष्टिकोण था । इसी कारण वे समन्वय का संबंल लेकर अपने कर्त्तव्य-मार्ग पर अग्रसर हुए । उनका सम्पूर्ण काव्य समन्वय की एक विराट चेष्टा है । उन्होंने लोक और शास्त्र, भक्ति और ज्ञान, ज्ञान और कर्म, धर्म औ कर्म, निर्गुण और सगुण, गृहस्य और वैरागी, ब्राह्मण और अछूत, जनभाषा और संस्कृत आदि के समन्वय के अतिरिक्त विभिन्न काव्य प्रणालियों का सफल एवं सुखद समन्वय किया है । भक्ति के क्षेत्र में शिव को राम का सबसे बड़ा भक्त बताया और राम के द्वारा शिव की पूजा कराके वैष्णवों एवं शैवों के मध्य भेद-भाव को बहुत कुछ कम कर एक विचित्र प्रकार का समन्वय दिखाया है । समाज में प्रचलित अनेकानेक विषमताओं के मध्य तुलसी ने समन्वय स्थापित करके समाज को एक स्वस्थ जीवन-दर्शन प्रदान किया ।

2.16. सारांश

हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के कथन के औचित्य के परिप्रेक्ष्य में तुलसी के समन्वयवादी दृष्टिकोण को आँकने का प्रयास किया गया है । हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा था ''लोकनायक वही हो

सकता है जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचार-निष्ठाएँ और विचार-पद्धतियाँ प्रचलित हैं । बुद्धदेव समन्वयकारी थे । गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसीदास समन्वयकारी थे ।'' समाज सापेक्ष समन्वय भावना के द्वारा गोस्वामी तुलसीदास वैषम्य एवं विद्वेष से पीड़ित समाज को साम्य एवं प्रेम के अमृत सागर की दिशा में ले चलने हेतु सदाचार, समता, ममता, शक्ति, शील, सौंदर्य, राग, त्याग, निःस्वार्थ सेवा भावना, अमलिन दांपत्य प्रेम, पातिव्रत्य, समर्पण भावना, नीति युक्त राजनीति, धर्म समंचित गुणों का जो संबल लेकर चले वही उनके समन्वय भावना की आधार बनी ।

राजा-प्रजा, व्यष्टि-समष्टि, मुनिजन-साधारण जन, ज्ञान-कर्म-भक्ति, सगुण-निर्गुण, ऊँची-जाति व निम्न जाति, वैष्णव-शैव शाक्त धर्म, नर-नारायण, द्वैत और अद्वैत, छंद और गीत, संगीत-साहित्य, अवधी-ब्रज, संस्कृत-अरबी-फारसी शब्दार्थ महाकाव्य-खण्डकाव्य आदि का समन्वय प्रस्तुत कर एकता, स्नेह, प्रेम एवं धर्म से अनुप्राणित मानवीय आदर्श समाज की परिकल्पना तुलसी के लोक कल्याण दृष्टिकोण का परिचायक है । भक्ति ओर दर्शन के अमृत कणों से युक्त मानस के माध्यम से लोकनायक गोस्वामी तुलसीदास समाज को लोकमंगल भावना से अनुप्राणित अपनी अभूत पूर्व समन्वय चेतना की संजीवनी शक्ति प्रदान कर उसे पुनर्जीवन शक्ति प्रदान करते हैं । समन्वय भावना से संपन्न गोस्वामी तुलसीदास जी की प्रत्येक चेतना जीवन मूल्यों से अनुप्राणित होकर निराशा के निबिड़ तिमिर में भटकती हुई मानव जाति को आशा की अमृत ज्योति प्रदान करती है । बालकाण्ड में गुरू-शिष्य, नर-नारी, लोक-परलोक, ज्ञान-भक्ति और कर्म आदि का जो समन्वय हुआ है वह गोस्वामी तुलसीदास की अत्यंत विराट् काव्य प्रतिभा का परिचायक है । अयोध्याकाण्ड के दशरथ एवं प्रजा जन के पूर्ण व्यवहारों के वर्णन तथा उत्तरकाण्ड के आदर्श रामराज्य निरूपण आदि प्रसंगों में आदर्श शासक एवं आदर्श प्रजा का सुंदर

समन्वय प्रस्तुत किया गया है । राजा दशरथ की प्रजा प्रीति, राजा राम के प्रजा हित कार्य, साधारण जनों के प्रति उनकी समादर भावना, अत्यंत प्रेम के साथ गुह-केवट एवं दास जनों एवं निम्न जाति के व्यक्तियों से मिलकर उनके साथ समता समंचित व्यवहार करनें वाले महाब्राह्मण गुरू वशिष्ठ, शबरी व ग्राम जन के प्रति बंधुवत् भावना प्रदर्शित करनेवाले रामचन्द्र एवं हनुमानजी के महत्तर कार्यों के वर्णन में मुनि जन, शासक एवं निम्नजातियों का समन्वय प्रस्तुत कर गोस्वामीजी वर्गरहित जात्यातीत समाज का आदर्श हमारे सम्मुख रखते हैं । शैव, शाक्त, वैष्णव आदि संप्रदायों में व्यक्त विद्वेष एवं वैमनस्य के विकराल विष का समन्वय मंत्र से निवारण कर तुलसीदास उनमें एकता की ज्योति जगाते हैं । इसी प्रकार छंद, काव्य पद्धति, भाषा चयन, शब्द प्रयोग, गुण-प्रदर्शन आदि में भी तुलसीदास अभूत पूर्व समन्वय भावना के मंगलस्वर सुनाते हैं ।

2.17. सम्भाव्य प्रश्न

1. तुलसीदास एक महान समन्वयवादी कवि थे । इस कथन की सोदाहरण सत्यता प्रमाणित कीजिए ।
2. ''अपने समय की विषम परिस्थितियों में समन्वय की विराट चेष्टा को लेकर ही गोस्वामी तुलसीदास लोकनायक हो सके ।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए ।
3. ''गोस्वामी तुलसीदास युगप्रष्टा और लोकनायक थे ।'' उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण के आधार पर इस कथन की मीमांसा कीजिए ।

NOTES

इकाई तीनः रामचरितमानस में चरित्र चित्रण एवं शील-निरूपण

इकाई की रूपरेखा

3.0. प्रस्तावना

3.1. उद्देश्य

3.2. तुलसी का चरित्र-चित्रण और शील निरूपण

3.3. तुलसी के पात्र तीन प्रकार के हैं

3.4. राम

- 3.4.1. अनंत सौंदर्य, शक्ति एवं शील के धनी
- 3.4.2. धीरता एवं गंभीरता
- 3.4.3. शरणागत के रक्षक
- 3.4.4. निर्मल एवं अनुकरणीय
- 3.4.5. यथार्थ चरित्र
- 3.4.6. लोक-व्यवहार से संप्रेषित
- 3.4.7. राम में संभावित मानवीय गुण या लक्षण हैं

3.5. भरत

- 3.5.1. भरत की निःस्पृहता
- 3.5.2. परम त्यागी एवं तपस्वी
- 3.5.3. गुणों के आगार

3.5.4. पराक्रमी तथा रणकुशल

3.6. लक्ष्मण

3.6.1. भातृप्रेम

3.6.2. गुरू भक्ति

3.6.3. वीर योद्धा

3.6.4. भक्ति और वीरता का समन्वय

3.6.5. अन्याय का विरोधी

3.6.6. क्रोधी

3.7. सीता

3.7.1. पवित्रता की मूर्ति

3.7.2. सीता का जन्म

3.7.3. विद्यावती सीता

3.7.4. वीर्य-शुल्का

3.7.5. श्रेष्ठ सुंदरी

3.7.6. सौंदर्य एवं प्रेम की प्रतिमा

3.7.7. पुष्पवाटिका में सीता

3.7.8. लक्ष्मी की अवतार

3.7.9. पतिप्राणा सीता

3.7.10. पातिव्रत्य

3.7.11. कुलवधू

3.7.12. औचित्य पालन

3.8. हनुमान

3.8.1. सफल दूत

3.8.2. धर्मनिष्ठा

3.8.3. परदुःख कातरता

3.8.4. वीरता

3.8.5. साहस

3.8.6. विवेकी

3.8.7. युद्धवीर

3.8.8. आपतकाल बांधव

3.9. रावण

3.9.1. विवेकशील

3.9.2. युद्धवीर

3.9.3. महाविद्या साधक

3.9.4. माया शक्ति संपन्न

3.9.5. संघर्षशील हृदय

3.10. मंदोदरी

3.11. मय

3.12. कुम्भकरण

3.13. विभीषण

3.14. मेघनाद

3.15. मारीच तथा कालनेमि

3.16. सूर्पनखा

3.17. त्रिजटा

3.18. बाली

3.19. सुग्रीव

3.20. अंगद

3.21. जामवंत

3.22. जटायु

3.23. तारा

3.24. महाराज दशरथ

3.25. सुमंत्र

3.26. मिथिलेश जनक

3.27. परशुराम

3.28. निषाद

3.29. शत्रुध्न

3.30. महारानी कौशल्या

3.31. सुमित्रा

3.32. कैकेई

3.33. मंथरा

3.34. मिथिलेशिनी रानी सुनयना

3.35. निष्कर्ष

3.36. सारांश

3.37. सम्भाव्य प्रश्न

3.0. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में रामचरितमानस में चित्रित तीन प्रकार के समाज के पात्रों का चित्रण किया गया है यथा

1. उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्र का मानवीय समाज ।
2. विंध्य पर्वत के दक्षिण में पठारी तथा अरण्य क्षेत्र का वनस्थली क्षेत्र
3. सुदूर दक्षिण स्थित सिंहली क्षेत्र का राक्षसी अथवा असुरी समाज ।

साथ ही तुलसी के तीन श्रेणी के पात्रों यथा सात्विक राजस और तामस पात्रों से पाठक वर्ग को अवगत कराया जाएगा । प्रस्तुत इकाई में महाराज दशरथ, श्री राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुध्न, मिथिलेश जनक, परशुराम, सुमंत्र, निषाद, महर्षि अत्रि, महारानी कौशल्या, कैकेई, सुमित्रा, सीतामाता, मिथिलारानी, सुनयना, मंथरा जो मानवी समाज से जुड़े हैं उनका विशद वर्णन किया गया है । साथ ही वनस्थली समाज से जुड़े जटायु, बाली, बानरराज सुग्रीव, अंगद, हनुमान, तारा एवं जामवन्त आदि के चारीत्रिक विशेषताओं को उभारा गया है । अंत में सिंहली क्षेत्र के पात्र रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण मेघनाद, कालनेमि मारीच का चित्रण किया गया है ।

3.1. उद्देश्य

तुलसी का काव्य वस्तुतः अपने आदर्श एवं श्रेष्ठ जीवन मूल्यों के लिए पढ़ा जाता है । तुलसीदास के चरित्रों का पठन कर सहृदय व्यक्ति अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त करता है । तुलसीदास मूलतः आदर्शवादी हैं । आदर्श चरित्रों की प्रतिष्ठापना उनका ध्येय रहा । राम जैसा आदर्श पुत्र, पति, राजा और भाई, लक्ष्मण व भरत जैसे आदर्श भाई, हनुमान जैसा आदर्श सेवक, सीता जैसी आदर्श नारी और यहाँ तक कि रावण जैसे आदर्श शत्रु का चित्रण इस इकाई का मूल उद्देश्य है ।

3.2. तुलसी का चरिद्ध-चित्रण और शील-निरूपण

प्रत्येक महाकाव्य में घटनाचक्र के संचालन निमित्त कतिपय पात्रों की सृष्टि करनी पड़ती है । इसी को चरित्र का तत्व कहकर अभिहित किया जा सकता है । महाकाव्य अपने व्यापक उद्देश्य को अपने जीवन्त पात्रों के माध्यम से ही व्यक्त करने में समर्थ होता है । 'मानस' महाकाव्य की चरित्र-चित्रण नियोजना पर दृष्टि प्रक्षेप करने के साथ ही हमें सबसे पहले जिस तथ्य का पता चलता है वह यह है कि गोस्वामीजी ने इस क्षेत्र मे मूलतः भारतीय काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण का ही अनुगमन किया है । प्राचीन आचार्यों की भाँति आपने भी नैतिकता एवं धार्मिकता की ही कसौटी पर अपने पात्रों का शीलांकन किया है । तुलसीदास ने मानवीय चेतनाओं की सूक्ष्मतम विवृत्ति को बड़ी ही सजगता के साथ आंका है ।

3.3. तुलसी के पात्र तीन प्रकार के हैं

रामचरितमानस के पात्र तीन श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं - सात्विक, राजस और तामस । सात्विक पात्रों को हम आदर्श पात्र कह सकते हैं । इस वर्ग के पात्र प्रायः निर्दोष एवं अनुकरणीय हैं । इसके अंतर्गत राम, भरत, लक्ष्मण, हनुमान एवं सीता आते हैं । राजस पात्रों के अंतर्गत आते हैं दशरथ, शत्रुध्न, विभीषण, सुग्रीव, कैकेयी, सुमित्रा, बाली, त्रिजटा, शबरी, तारा, जटायु, सुमंत्र, मिथिलेश जनक, परशुराम, मंथरा, रानी सुनयना, मंदोदरी, मारीच तथा कालनेमि जो सामान्य शील वाले पात्र कहे जा सकते हैं । तामस कोटि के पात्र वे पात्र हैं जो खल पात्र हैं । ये सात्विक पात्रों के एकदम विपरीत हैं । रावण, कुम्भकरण, मेघनाद आदि इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । जिस प्रकार सात्विक पात्र आदर्श चित्रण के भीतर आते हैं, उसी प्रकार ठेठ तामस पात्र भी आदर्श चित्रण के अन्तर्गत आते हैं । तुलसीदास ने

तीनों वर्गों के पात्रों को मानवोचित आदर्शों के अनुरूप गढ़ा है । किसी स्थल पर एक भी पात्र यथार्थ की भूमि को छोड़कर आसमान का रास्ता अपनाता हुआ नहीं दिखाई देता है ।

3.4. राम

तुलसी के प्रबंध काव्य के प्रधान पात्र राम हैं । राम के चरित्र को गोस्वामी तुलसीदास ने नायक की उच्च एवं उदात्त भूमि पर लाकर उद्‌घाटित किया है । सर्वाधिक भिन्न परिस्थितियों में होकर वे गुज़रते हैं । संपूर्ण कथानक वस्तुतः उन्हीं के व्यक्तित्व के चारों ओर बुना हुआ दिखाई देता है । भिन्न-भिन्न मनोविकारों को उभारने वाले जितने अधिक अवसर राम के चरित्र मे आते हैं उतने अन्य किसी पात्र के चरित्र में नहीं ।

3.4.1. अनंत सौंदर्य शक्ति एवं शील के धनी

सौंदर्य एवं शक्ति के साथ धीरता, गंभीरता, कोमलता आदि उदात्त गुणों का समावेश राम के व्यक्तित्व में किया गया है । यही उनका 'रामत्व' है । अपनी संपूर्ण गरिमा से युक्त उच्च क्षत्रिय कुलोत्पन्न धीरोदात्त नायक हैं । राम की सुंदरता अनन्त है, अपार एवं वर्णनातीत है । गोचर और मन के द्वारा सौंदर्य की जो कल्पना की जा सकती है, वह भी उनकी सुन्दरता के सम्मुख निंद्य है -

नील सरोरूह नीलमणि, नील नीरधर स्याम ।
लाजहिं तन सोभा निरखि, कोटि-कोटि सतकाम ।

शील एवं करूणा के तो वे विराट सिंधु ही हैं । गोस्वामी उन्हें बार-बार करुणा-सिन्धु कहकर इसलिए संबोधित करते हैं कि करूणा की व्यापक परिधि के अंतर्गत ही उन्होंने राम की सुशीलता को भी समेट लिया है । औदात्य का योग तो उनके चरित्र में इस सीमा तक पाया जाता है कि वे खेल के मैदान में भी अपने भाईयों को पराजित होते हुए नहीं देख सकते । अपने राज्याभिषेक की बात सुनते ही वे निष्कलंक रघुकुल के औचित्य की चिंता करने

लगते हैं । उनके सात्विक शील की पराकाष्ठा का निदर्शन तो गोस्वामीजी ने केवल एक ही पंक्ति के 'जाहि निरखि मग सांपिन बीछी, तजहि विषम विष तामस तीछी' द्वारा पूरे कौशल के साथ कर दिया है ।

राम के शौर्य की भी झलक धनुर्भंग, परशुराम गर्व हरण, सेतुबंधन एवं राम रावण युद्ध के प्रसंगों में देखने को मिलता है । उनकी वीरता का तो कहना ही क्या है । वह त्रैलोक विजयी रावण का वध करके विजय श्री वरण करते हैं । स्वर्ग जाते हुए जटायु के पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ रावण-वध की अग्रिम सूचना देते हुए कह देते है -

सीता हरण तात जनि, कहेउ पिता सन जाइ ।
जो मैं राम तो कुल सहित, कहहि दसानन आइ ।।

राम और लक्ष्मण दोनों ही अद्वितीय वीर हैं । वीरता की दृष्टि से दोनों में भेद करना कठिन है । परन्तु स्वभाव अथवा शील की दृष्टि से उनका पार्थक्य स्पष्ट है । धनुष भंग के अवसर पर परशुराम संवाद के प्रसंग में लक्ष्मण का उग्र स्वभाव और राम का धीर एवं प्रशांत स्वभाव सामने आता है ।

3.4.2. धीरता एवं गंभीरता

राम के धीरता एवं गंभीरता युक्त सुशील अन्तःकरण की दो विशेषताओं की ओर ही संकेत कर देना पर्याप्त है । वे किसी भी व्यक्ति पर बुरे भाव का आरोप नहीं करते तथा उनको कर्त्तव्याभिमान छूकर भी नहीं गया है । समस्त अवध वासियों को लेकर भरत को चित्रकूट की ओर आते देखकर लक्ष्मण कह उठते हैं -

कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी । जानि राम बनवास एकाकी ।
कहि कुमंत्र मन, साजि समाजू । आई करइ अंकटक राजू ।।

इस अनुमान पर तुरंत ही लक्ष्मण की त्यौरी चढ़ जाती है और वह यहाँ तक कह देते हैं - ''सानुज निदरि निपातउँ खेता ।''

सुशीलता की मूर्ति राम के लिए इस प्रकार का आरोप लगाना तो दूर रहा, वे भरत की सुशीलता के प्रति पूर्णतः आश्वस्त रहते हैं । वह लक्ष्मण को समझाते हुए कहते हैं -

सुनहु लखन भल भरत सरीसा । विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ।
भरतहि होइ न राज-मद, विधि-हरि-हर-पद पाई ।
कबहुँ कि काँजी-सीकरनि छीर-सिंधु बिनसाइ ।

3.4.3. शरणागत के रक्षक

भक्तों को सबसे अधिक वश में करने वाला राम का गुण है शरणागत की रक्षा । शरणागति भारतीय संस्कृति और धर्म-भावना का बहुत बड़ा गुण माना जाता है । शरणागत की रक्षा यहाँ प्राण देकर भी की जाती है । विभीषण को अपनी शरण मे आया देखकर राम कहते हैं कि भले ही निशाचर है, शत्रु का भाई है, परन्तु मेरी शरण का अधिकारी है, क्योंकि -

सरनागत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पाँवर पाप मय, तिनहिं बिलोकत हानि ।

3.4.4. निर्मल एवं अनुकरणीय

राम का चरित्र सर्वथा निर्मल एवं अनुकरणीय है । अपनी तेजस्विता, वाग्मिता, धीरता, गंभीरता, उदात्तता, सहिष्णुता, धर्म प्रवणता आदि गुणों के कारण प्राणी मात्र को प्रेरित करने की क्षमता रखते हैं । राम का चरित्र यथार्थ की भूमि पर आधारित है । यदि ऐसा नहीं होता, तो राम किसी अन्य लोक के प्राणी प्रतीत होने लगते, उनका चरित्र मानव द्वारा करणीय एवं अनुसरणीय नहीं रह जाता । सुमंत जब राम-लक्ष्मण को वन में पहुँचा कर अयोध्या लौटने लगते हैं, तब रामचन्द्रजी अपने पिता दशरथ के लिए अत्यंत प्रेम और आदर भरा संदेश भेजते हैं । लक्ष्मण को यह उचित नहीं लगता है । जिस निष्ठुर पिता ने स्त्री के कहने पर निर्दोष एवं शालीन पुत्र को वनवास दे दिया, उसके लिए यह संदेश क्यों ?

लक्ष्मण पिता के प्रति कुछ कठोर वचन कह उठते हैं । इस पर राम उन्हें रोक देते हैं और सारथी से विनती करते हैं कि वह पिता से लक्ष्मण की ये बाते न कहें -

पुनि कछु लषन कही कटु बानी । प्रभु बरजेउ बड़ अनुचित जानी ।
सकुचि राम निज सपथ दिखाई । लषन-संदेसु कहिय जनि जाई ।।

3.4.5. यथार्थ चरित्र

राम बाली को छिप कर मारते हैं । लोग इसे राम के उज्ज्वल चरित्र पर धब्बा बताते हैं । इस प्रकार के एक-दो धब्बे ही आदर्श चरित्र राम को कल्पना लोक का प्राणी होने से बचाते हैं । यथार्थ का तकाज़ा ही यह था कि सीता को ले जाते हुए रावण को देखने वाले सुग्रीव को किसी प्रकार अपने पक्ष में किया जाए । राम के इस व्यवहार की समीक्षा करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि - "वे ईश्वरता दिखाने नहीं आए थे, मनुष्यता दिखाने आए थे । त्रुटि से सर्वथा रहित मनुष्य कहाँ होते हैं ? इसी धब्बे के कारण हम उन्हें मानव जीवन से तटस्थ नहीं समझते-तटस्थ क्या कुछ भी हटे हुए नहीं समझते ।"

3.4.6. लोक व्यवहार से संप्रेषित

राम के लोक-व्यवहार संबंधी यह स्थल विचारणीय है, जिसमें रावण को मारने के पहले राम विभीषण की ओर देखते हैं -

मरइ न रिपु श्रम भयउ विसेषा । राम बिभीषन तन तब देखा ।।

राम सोचते हैं कि इस समय विभीषण के क्या मनोभाव हैं । आखिर तो भाई है । कहीं ऐसा तो नहीं कि विभीषण पीछे से छुरी-भोंकने की ताक में हों । इस ओर पाठक राम की व्यावहारिकता के प्रति आश्वस्त बना रहे । इसी हेतु गोस्वामी अगली पंक्ति में ही बात स्पष्ट कर देते हैं -

'उमा काल मर जाकी ईछा । सो प्रभु जन कर लेति परीछा ।' राम के द्वारा सीता की अग्नि परीक्षा भी यह द्योतित करती है कि तुलसी के राम समाज के कठोर यथार्थ के प्रति सदैव सजग बने रहते हैं ।

3.4.7. राम में संभावित मानवीय गुण या लक्षण हैं

सौंदर्य, माधुर्य, कोमलता, पारिवारिक संबंध, गुरू-पितृ-मातृ भक्ति, श्रद्धा, कुशाग्रता, प्रेम, सौजन्य, गुणग्राहिता, सत्यपरायणता, स्पष्टवादिता, दाम्पत्य भाव, निरभिमानता, त्याग, तपस्या, लगन, उत्साह, विद्वत्ता, राजनीतिज्ञता, सर्वकौशल निपुणता, आत्मबल, भावुकता, कृतज्ञता, समानता की भावना, निर्लोभता, मित्रता, पराक्रम,, वीरता, धैर्य, शौर्य, ऐश्वर्य, न्यायदृढ़ता, वैराग्य, परोपकारिता, भक्तवत्सलता, शरणागतवत्सलता, प्रजावत्सलता, लोकप्रियता, दूरदर्शिता, अनुशासनता तथा नैतिकता आदि । अतः मानस के नायक श्रीराम में कोई अवगुण दिखाई नहीं पड़ता जिससे यह निश्चित प्रायः हो जाता है कि वे देवोत्तर थे अर्थात् मनुष्य रूप में वे आदि पुरूष थे । गोस्वामी तुलसीदास ने राम को परमब्रह्म माना है । परम ब्रह्म परमात्मा श्रीराम को परिस्थिति वश सगुण सबल रूप में मानव शरीर धारण करना पड़ा था ।

3.5. भरत

राम और लक्ष्मण के चरित्र की अपेक्षा भरत का चरित्र आख्यान के भीतर बहुत कम व्याप्त है । वह सर्वथा निर्दोष, निर्मल एवं उज्ज्वल है । उसमें कभी-कभी राम से भी अधिक उत्कर्ष दिखाई देता है । भरत के चरित्र से बढ़ कर शील की कसौटी हो ही नहीं सकती । गोस्वामी तुलसीदास अपने रामचरितमानस में भरत जी के गुणों के वर्णन में अपनी लेखनी की अमृतमयी धारा की अन्तिम बूँद तक निचोड़ देते हैं । संपूर्ण मानस में जिस किसी ने भी उनके बारे मे जहाँ कहीं भी और जब कभी भी कुछ कहा है वहीं उनकी गुणो की प्रशंसा है । उन पर किंचित मात्र भी आक्षेप

कहीं भी नहीं है । यदि कहीं अनजाने उनके प्रति किसी के मन में विरोधी भावना आई भी है तो वास्तविकता प्रकट होते ही वह कहीं अधिक श्रद्धा के पात्र बन जाते हैं ।

3.5.1. भरत की निःस्पृहता

जिस अयोध्या के राज्य को कैकेयी ने उसके लिए सुरक्षित कर दिया था उस राज्य की तरफ वे आँख उठाकर तक नहीं देखते । उस राज्य को न केवल वे त्याग ही नहीं देते वरन् उसके प्रति उनके मन में घृणा उत्पन्न हो जाती है । जो राज्य पिता की मृत्यु का कारण व राम जैसे भ्राता के बिछोह का कारण बना, भला उस राज्य को कैसे अपनाते । अवध की सारी विपत्ति एवं दुर्व्यवस्था, सीता-राम-लक्ष्मण के बनवास में अपने को निमित्त पाकर कैकेयी को निष्ठुरता से फटकारते हैं, माँ कौशल्या के सामने सफाई देते हैं, भरी सभा में अपना सिर धुनते हैं । यह विष-शूल उनके हृदय को इस प्रकार बेधता है जो आजन्म भरता नहीं । सभी जड़ तथा चेतन पदार्थ, धूल के कण से लेकर मनुष्य तक जो भी श्री राम के वनमार्ग में उनके संपर्क में आये हैं सबको प्रणाम करते हुए और सप्रेम आलिंगन में भरते हुए दिखलाई पड़ते हैं ।

3.5.2. परम त्यागी एवं तपस्वी

साधुता, प्रेम, तपस्या तथा त्याग में तो वे आदर्श मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम से भी आगे निकल जाते हैं -

लखन राम सिय कानन बसहीं भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं ।
दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू । सब बिधि भरत सराहन जोगू ।

श्री राम का बन में नंगे पाँवों चलना, गर्मी-सर्दी-वर्षा का सहना, कन्द-मूल-फल के आहार को सोचकर इतने विरक्त हो जाते हैं कि सारे भोग-विलास को आजीवन त्याग कर एक परम तपस्वी का जीवन बिताते हैं । चौदह वर्ष तक श्री राम से भी कठिन तप

करते हुए उनकी थाती अयोध्या राज्य को अपनी छाती से लगाये हुए उनके आगमन की प्रतीक्षा में क्षण-क्षण की गिनती करते रहते हैं । अन्त में उनके लौटने पर उसको उन्हें समर्पित कर देते हैं ।

3.5.3. गुणों के आगार

भरत एक राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री, न्यायप्रिय तथा कुशल शासक थे । अयोध्या से कुछ दूर नन्दी ग्राम में वास करते हुए भी राज्य में, किसी प्रकार की अव्यवस्था एवं अराजकता को उत्पन्न होने का मौका नहीं दिया । राज्य के कोषागर को द्विगुणित कर दिया ।

3.5.4. पराक्रमी तथा रणकुशल

भरत के रणकौशल तथा पराक्रम का प्रमाण केवल एक जगह मिलता है । हनुमानजी को धवलागिरि को लेकर लंका जाते समय अयोध्या पर आती हुई कोई विपत्ति या किसी निशाचर का आक्रमण समझकर एक मात्र एक सींक के बाण से मार गिराते हैं -

गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ । अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ ।।
देखा भरत विशाल अति । निसिचर मन अनुमान ।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि ।।
परेउ मुरूछि महि लागत सायक । सुमिरत राम राम रघुनायक ।।

हनुमानजी के होश में आजाने और सारा वृत्तांत सुन लेने पर अति दुखित होकर हनुमान को धवलागिरि सहित अपने बाण पर चढ़ाकर क्षण मात्र में जहाँ श्री राम हैं वहाँ पहुँचा देने की कुशलता रखते हैं ।

भरत के गुणो का वर्णन माँ शारदा तथा सहस्त्रमुखी शेषनाग भी कर सकने में असमर्थ हैं -

विधि गनपति अहिपति सिव सारदा कवि कोविद बुध बुद्धि विशारदा ।
भरत चरित कीरति करतूती । धरम सील गुन बिमल विभूति ।।

3.6. लक्ष्मण

लक्ष्मण मानस में श्री राम की पूर्ण छाया है । राम के सुख मे दुःख में, वैभव में, खेल में, व्याह में, शांति में, युद्ध में, दिन में, रात में, घर में, बन में, थल में, अविचलित निरन्तर उनके साथ हैं । राम के प्रति उनका आदर्श प्रेम पराकाष्ठा को छूता है । मानस में लक्ष्मण आदिशेष के अवतार हैं । लक्ष्मण भ्रातृ सेवा परायण होकर अपने अग्रज राम के साथ वन का पथ अपना लेते हैं । मानस में वाल्मीकि रामायणवत् लक्ष्मण महान वीर, असमान भ्रातृप्रेमी एवं सेवा परायण महामानव के रूप में चित्रित है ।

3.6.1. भ्रातृप्रेम

मानस में चित्रित लक्ष्मण के चरित्र में आदर्श भ्रातृप्रेम की पराकाष्ठा दिखाई पड़ती है । लक्ष्मण अपनी पत्नी उर्मिला को छोड़कर अग्रज राम की सेवा करने हेतु चौदह वर्ष के लिए नगर छोड़ देते हैं, और ब्रहमचर्य का पालन करते हैं । महान त्यागी अनुज के रूप में लक्ष्मण इतिहास में विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं ।

3.6.2. गुरू भक्ति

लक्ष्मण आदर्श भ्राता होने के अतिरिक्त एक आदर्श गुरूभक्त शिष्य भी हैं । विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा के हेतु राम के साथ लक्ष्मण सिद्धाश्रम जाते हैं । गुरू के इशारे पर दोनों भाई ताड़का से युद्ध करते हैं । सुबाहु मारीच के युद्ध में भी उनकी निष्ठा दिखाई देती है । वशिष्ठ के प्रति भी इसी प्रकार की निष्ठा लक्ष्मण प्रदर्शित

करते हैं । यज्ञ रक्षा करते हुए राम लक्ष्मण धर्म द्रोही राक्षसों का वध करते हैं ।

3.6.3. वीर योद्धा

मानस में लक्ष्मण वीर योद्धा के रूप में चित्रित हैं । विश्वामित्र यज्ञ रक्षा प्रसंग में प्रप्रथमतः राम लक्ष्मण की वीरता प्रकाश में आती हैं । लक्ष्मण परम पराक्रमी एवं धनुर्विद्या में प्रवीण तथा अन्यान्य दिव्यास्त्रों के प्रयोग में सक्षम है । लक्ष्मण के परम उग्र रूप और भयंकरता से सारी सभा भयभीत होकर काँपने लगती है -

बोलत लखनहि जनकु डराहीं । भ्रष्ट करहु अनुचित भल नाहीं ।
थर थर कांपहि पुर नर नारी ।

3.6.4. भक्ति और वीरता का समन्वय

लक्ष्मण के चरित्र में भक्ति और वीरता का अपूर्व समन्वय दिखाई पड़ता है । राम भक्ति के कारण ही मानस के लक्ष्मण अप्रतिम वीरता दिखाकर राम के द्रोहियों का अंत करते हैं । मानस में राम विष्णु के अवतार ही नहीं बल्कि साक्षात् परब्रह्म हैं । लक्ष्मण राम के ब्रह्मत्व को जानते हैं । मानस में आद्यांत लक्ष्मण परम राम भक्त के रूप में चित्रित हैं ।

3.6.5. अन्याय का विरोधी

अन्याय के प्रति कठोर असहिष्णुता उनकी न्यायप्रियता प्रदर्शित करती है । श्री राम के प्रति किये गये अन्याय के कारण वे पितृ तथा मातृ भक्ति तक को भूल जाते हैं -

गुरू पितु मातु वर्णन जानउं काहू । कहउं सुभाव नाथ पतिआहू ।।

अंत तक अन्याय करने वाले को क्षमा नहीं कर सके हैं । कैकई को तो आजीवन क्षमा नहीं कर सके । अपने इसी स्वभाव

के कारण चित्रकूट में भरत के दल-बल सहित आगमन को एक कुविचार ही समझकर भाई और सेना सहित उनका संहार कर डालने की भीषण प्रतिज्ञा कर बैठते हैं और श्री राम द्वारा शान्त किये जाते हैं ।

3.6.6. क्रोधी पुरूष

मानस के लक्ष्मण के चरित्र में क्रोध की मात्रा अत्याधिक मात्रा में दिखाई पड़ती है । यत्किंचित अन्याय को भी वे कभी नहीं सहन करते । मानस में शिव धर्नुभंग करने वाले राम के प्रति क्रोधित हो ललकारते हुए आने वाले परशुराम से लक्ष्मण वाग्युद्ध करते हैं । राम के रोकने पर भी वे नहीं रूकते । मानस के लक्ष्मण कैकेयी के प्रति क्रोध दिखाते हैं और अत्यंत क्रुद्ध होकर वे अपने पिता की निंदा तक करने लगते हैं । राम रावण युद्ध संदर्भ में भी शत्रुसेना से जुझते समय अत्यंत क्रोधाविष्ट होकर वे उनका संहार करते हैं । किसी प्रकार के अन्याय को तिल भर भी न सहने की प्रवृत्ति ही उनके क्रोध के मूल में क्रियाशील है । लक्ष्मण राष्टाभिमान या जात्यभिमान मिश्रित अन्याय के प्रति अपनी इसी असहिष्णुता के कारण सर्वत्र ग्रीष्मकालीन मध्याह्न के सूर्य के समान प्रचण्ड और प्रखर ही दिखाई पड़ते हैं । कुछ सज्जनों को लक्ष्मण की असहिष्णुता तथा स्पष्टवादिता का बुरा लगना स्वाभाविक है । परन्तु यह उनकी मात्र सरलता ही कही जायगी ।

3.7. सीता

मानस में सीता का चरित्र अपूर्व शालीनता के शिखरों का स्पर्श करता है । मानस की सीता का चरित्र वाल्मीकि द्वारा चित्रित सीता के चरित्र के बहुत समीप है । वह गुणों की मंजुषा, शील की गंगा, त्याग की मूर्ति, धर्म की खनि और सुगुणों की रत्न मालिका है ।

3.7.1. पवित्रता की मूर्ति

आपादमस्तक सीता मानस में पवित्रता की मूर्ति के रूप में, जगन्नन्दिनी के रूप में, एक विशिष्ट दिव्य दीपिका के रूप में विराजित हैं । रामचन्द्र सीता की शोभा को अलौकिक मानते हैं -

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा ।
सहज पुनीत मारे मनु छोभा ।।

3.7.2. सीता का जन्म

मानस में हल चलाते समय जनक को एक पेटी प्राप्त होती है जिसमें एक शिशु दिखाई पड़ती है । उसे पुत्री के रूप मे मिथिलापति जनक पालते पोसते हैं - सीता का यह वृत्तांत वाल्मीकि रामायण वत् है ।

3.7.3. विद्यावती सीता

मानस में सीताजी विद्यावती एवं शक्तिमती है । वे सकल कला संपन्न हैं ।

3.7.4. वीर्य शुल्का

मानस में सीता वीर्य शुल्का हैं, अर्थात् शिवधनु वज्रावर्तधनुष पर डोरी चढ़ाने वाले वीर पुरूष को ही वह दी जाती है । मानस की सीता पुष्प वाटिका में प्रप्रथमतः रामचन्द्रजी को देखती हैं। सीता गिरिजा पूजन हेतु आती है -

तेहि अवसर सीता तहँ आई ।
गिरिजा पूजन जननि पठाई ।।

सीता वीर्य शुल्का है । राम जब धनुष उठाने लगते हैं तब सीता धनुष से विनती करती है कि धनुष अपना भार कम कर ले । नागरिक चाहते हैं कि जनक प्रण तज कर सीता राम का परिणय संपन्न करायें -

बिनु विचार पनु तजि नरनाहू । सीय राम कर करे बिबाहू ।।

3.7.5. श्रेष्ठ सुंदरी

मानस में सीता अद्‌भुत गुणवती एवं रूपवती के रूप में वर्णित हैं । पुष्पवाटिका प्रसंग में सीता सौंदर्य का चारूचित्र अंकित है - मृगनयनी सीता जहाँ देखती है, वहाँ मानों कमलों की वर्षा होती है -

जहँ बिलोक मृग शाबक नैनी ।
जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी ।।

3.7.6. सौंदर्य एवं प्रेम की प्रतिमा

सीता चरित्रगत बाह्य सौंदर्य का अद्‌भुत चित्रण मानस की एक विशेष उपलब्धि है । प्रेम की साक्षात् मूर्ति इस विश्व सुंदरी का वर्णन तुलसीदास अपूर्व काव्यकला के साथ प्रस्तुत करते हैं । सीता की अलौकिक शोभा से आकर्षित राम उनके मुख सरोज मकरंद की छवि का पान भ्रमर की तरह करते हैं -

करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लोभान ।
मुख सरोज मकरंद छबि करइ मधु पइव पान ।।

3.7.7. पुष्पवाटिका में सीता

रामचन्द्रजी पुष्प वाटिका में सीता को देखकर मंत्रमुग्ध से हो जाते हैं । सीता दिव्यता की दीपशिखा है -

छवि गृह दीप शिखा जनु जरई ।
सुंदरता कहँ सुंदर करहिं ।।

सुंदरता को ही सुंदर बनाने वाली अद्‌भुत लावण्यवती है। रामचंद्रजी को आश्चर्य होता है कि परस्त्री को कभी नहीं देखने वाले उनके मन में सीता के प्रति मोह भावना कैसे उत्पन्न हुई । सीता भी राम से माहित होती है । पुष्प चयन के बहाने दोनों एक

दूसरे को देख लेते हैं । पूर्व प्रेम की यह विशिष्टता केवल मानस में है ।

3.7.8. लक्ष्मी की अवतार

मानस में वाल्मीकिवत् राम एवं सीता विष्णु एवं लक्ष्मी के अवतार हैं । मानस की सीता के चरित्र में देवत्व के गुण हैं । राम सव्यं पुष्प वाटिका में ''प्रीति पुरातन'' पहचान लेते हैं । देवी के रूप में मानस में सीता का चरित्रांकन हुआ है । राम जानते हैं कि सीताराम का प्रेम अलौकिक है यानि वे दोनों लक्ष्मीनारायण हैं -

गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि ।
मन विहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि ।।

3.7.9. पतिप्राणा सीता

सीता वनगमन के लिए सिद्ध होने वाले राम के साथ वन जाने को उद्यत होती है । इस संदर्भ में मानसकार सीता के पतिप्राणा चारित्रिक तत्व हो अत्यंत सक्षम अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं । मानस में सीता कहती है कि स्त्री के लिए अन्य सभी संबंधों से अधिक महत्वपूर्ण संबंध केवल पति का है । वन जाने से सीता को रोकने का प्रयास करनेवाने राम से जानकी कहती है कि राम के बिना वे जीवित रहेंगी ही नहीं । वे कहती हैं कि पति के बिना स्त्री वैसी ही है जैसे पानी के बिना नदी और जीव के बिना देह -

जिय बिनु देह नदी बिनु वारी ।
तैसिह नाथ पुरूष बिनु नारी ।।

3.7.10. पातिव्रत्य

सीता के चरित्र की अपूर्व विभूति पातिव्रत्य है । मानस की सीता कर्मवश कनक मृग माँगती है । राम उस मायामृग का पीछा करते हुए चले जाते हैं । 'हा लक्ष्मण' शब्द सुनकर सीता द्वारा प्रेषित लक्ष्मण राम के यहाँ आते हैं । इसी बीच में दुरात्मा रावण अपनी योजना के अनुसार रामाश्रम चलकर सीता का अपहरण

करता है । लक्ष्मण की तरह जब रावण सिंहनाद करता है, तब राम निश्चित इंगित के अनुसार लक्ष्मण को संकटग्रस्त मानकर उसकी रक्षा के लिए सीता को छोड़कर चले जाते हैं । उस समय रावण विमान में आकर सीता का अपहरण करता है । लंका के अशोक वन में सीता पतिवियुक्त होकर विलाप करती है । मानस की सीता राम नाम जपती है और अपने आभूषण, पट आदि भावी अभिज्ञान के रूप में नीचे गिरा देती है । लंका में भी रावण सीता का हृदय अपनी ओर खींचने का विश्व प्रयत्न करता है । पतिव्रता सीता का हृदय वज्र से बना हुआ है । अतः वह कभी विचलित नहीं होती । आद्यंत सीता असमान पतिव्रता के रूप में चित्रित है ।

3.7.11. कुलवधू

मानस में सीता कुलवधू के रूप में चित्रित है । सदा वे रघुवंश के गौरव के संबंध में सोचती है । सीता के हृदय में अपने स्वामी एवं देवर लक्ष्मण की वीरता के प्रति आदर की भावना है । कुलवधु की भाँति प्रमदवन में व्रत रखती है ।

3.7.12. औचित्य पालन

सीता के चरित्र में सर्वत्र औचित्य पालन की प्रवृत्ति विद्यमान है । अपनी सास कौशल्या के चरण वे बार-बार छूती है । औचित्य की दृष्टि से ही सीता पतिवियुक्ता होकर अंतः पुरमें रहना नहीं चाहतीं । औचित्य की यह मात्रा उस समय स्पष्टतः प्रकाश में आती है जब हनुमानजी सीता को लंका से श्रीराम के यहाँ ले जाने की अपनी योजना बताते हैं । औचित्य गुणसंपन्न सीता मारूती से कहती है कि स्वामी की आज्ञा के बिना ऐसा करना उचित नहीं है ।

स्वामी विवेकानन्दजी ने मद्रास में दिये गये भाषण में सीताजी के संबंध में जो वक्तव्य दिया वह इस चरित्र की अवर्णनीयता को पूर्णरूपेण प्रमाणित कर देता है "रामचरितमानस

के सीता के विषय में क्या कहा जाए । संसार के समस्त प्राचीन साहित्य को छान डालो, संसार के भावी साहित्य का भी मंथन कर लो, किन्तु उसमें से सीता के समान दूसरा चरित्र नहीं निकाल सकोगे । सीता-चरित्र अद्वितीय हे । यह चरित्र सदा के लिए एक ही बार चित्रित हुआ है । राम तो कदाचित अनेक हो गए हैं, किन्तु सीता और नहीं हुई ।''

3.8. हनुमान

हनुमानजी मानस में उपनायक की तरह हैं । मानस में अपने प्रकाट्य से अंत तक नायक के साथ एक प्रधानतम पात्र के रूप में रहते हैं । बाल ब्रह्मचारी, मृत्युंजय, हनुमान की शक्ति, उनका पराक्रम, उनका सामर्थ्य, उनकी कार्यकुशलता, उनकी गति, उनकी एकाग्रत एवं तन्मयता आदि सभी अकथनीय हैं । उछलकर सूर्य को निगल जाने का सामर्थ्य उनमें था, शतयोजन समुद्र को छलांग जाने का पौरूष उनमें था, रावण रक्षित लंका को जलाकर तहस नहस कर देने की चतुरता और पराक्रम उनमें था, कुछ घंटों ही में लंका से जाकर हिमांचल स्थित धवलागिरि को उठा लाने की शक्ति और गति उनमें थी । वे असम्भव को भी संभव कर देने वाले थे ।

3.8.1. सफल दूत

मानस में हनुमानजी राम के सफल दूत के रूप में चित्रित हैं । मानस में अशोक वन में पहुँचकर सीताजी के दर्शन करते हैं तथा राम, लक्ष्मण की गाथा सुनाते हैं ।तत्पश्चात् सीताजी से अभिज्ञान के रूप में चूड़ामणि ग्रहण कर रामचन्द्रजी के यहाँ जाकर प्रदान करते हैं । दूत के रूप में वे जो निष्ठा, साहस एवं चातुर्य प्रदर्शित करते हैं वह अन्यत्र नहीं मिलता । मानस में सीताजी की अनुमति प्राप्त कर वे अशोक वन के तरूओं पर चढ़कर फल तोड़कर खाते हैं और साथ ही सफल दूत के रूप में हनुमानजी

शत्रुपुरी को नष्ट करते हैं । केवल दूत का काम ही नहीं बल्कि योद्धा का कार्य भी वे दूत के रूप में निभाते हैं ।

3.8.2. धर्म निष्ठा

हनुमानजी के चरित्र में धर्म के प्रति अपार निष्ठा दृग्गोचर होती है । मानस में वे ब्रह्मास्त्र से बंदित होने के उपरांत रावण के दरबार में उनके अधर्म का खण्डन करते हैं । हनुमानजी सर्वत्र धर्म धुरंधर के रूप में चित्रित हैं । उनमें योगसिद्धि, तन्मयता, मन की स्थिरता, चित्तनियन्त्रण आदि के लक्षण पाये जाते हैं ।

3.8.3. परदुखकातरता

मानस में हनुमान के चरित्र में परदुखकातरता हर कहीं दिखाई पड़ती है । सीतापहरण से दुखित रामचंद्रजी के दुख को कम करने के लिए वे चाहते हैं कि शीघ्र सीता को ले जाकर रामचन्द्रजी के सुपुर्द करें । स्वामी की आज्ञा न होने के कारण सीताजी इस प्रस्ताव को नहीं मानती । हनुमानजी सीताजी से रामचन्द्रजी के विरह का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उनका दुख सीताजी के दुख से भी दुगुना है और वे सदा सीता का स्मरण करते रहते हैं । मानस में सुग्रीव एवं रामचन्द्रजी की भेंट कराते समय भी हनुमानजी सुग्रीव के दुख से अत्यंत दुखी होते हैं । रामचन्द्रजी के प्रथम दर्शन के संदर्भ में भी उनकी पर दुखकातरता प्रकाश में आती है । वे कहते हैं 'कठिन भूमि कोमल पदगामी ।' युद्ध के संदर्भों में भी शत्रुओं से घायल होते हुए अपने पक्ष के वीरों की रक्षा के लिए हनुमानजी बीच में आकर शत्रुओं से जूझकर मित्र आदि की सहायता करते हैं ।

3.8.4. वीरता

विश्व साहित्य में हनुमान जैसे महावीर का चरित्र और कोई दृग्गोचर नहीं होता । मानस के हनुमान अंकुठित गति से भूतल वियत्तल एवं रसातल में गमन कर दुष्ट व्यक्तियों का नाश करते

हैं । युद्ध के कई प्रसंगों में हनुमानजी उत्साह के साथ वीरता प्रदर्शित करते हैं । हनुमानजी लंका दहन करने के उद्देश्य से इंद्रजित को बंदित बनाकर रावण के दरबार में प्रवेश करते हैं ।

3.8.5. साहस

महावीर हनुमान का चरित्र साहस का निक्षेप है । मानस के हनुमान बड़े साहस के साथ रावण के दरबार में उनके दुष्कृत्य की टीका करते हैं । क्रुद्ध रावण हनुमानजी की पूँछ में आग लगाने की आज्ञा देता है । इस संदर्भ में हनुमान पूँछ बढ़ाकर भवन से भवन पर कूदकर सारे नगर को जलाकर अंत में राम के यहाँ चले जाते हैं । लंका के युद्धों में बड़े साहस के साथ हनुमान राक्षसों से युद्ध कर रामकार्य को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है । सेतुबंधन, सागर उल्लंघन, लंकिनी प्रसंग, लंकादहन प्रसंग, हनुमान कुम्भकर्ण युद्ध, हनुमान रावण युद्ध आदि प्रसंगों में हनुमानजी जो लोकोत्तर पराक्रम दिखाते हैं वह विश्व साहित्य के अन्य किसी चरित्र में दृग्गोचर नहीं होता । मानस के हनुमान में सहज साहस के अतिरिक्त ब्रह्मचर्य संजनित महा शक्ति का भी समावेश है ।

3.8.6. विवेकी

मानस में हनुमान एक महान विवेकशील के रूप में चित्रित है । हनुमानजी विवेकशील ही नहीं बल्कि राम भक्तों के परम प्रेमी के रूप में भी चित्रित हैं । तुलसीदास हनुमान के चरित्र को अतिमानव के रूप में चित्रित कर उन्हें परम राम भक्त का स्वरूप प्रदान करते हैं । वस्तुतः यह हनुमान के देवत्व का रूपायन है ।

3.8.7. युद्धवीर

महावीर हनुमानजी मानस में कर्मवीर के अतिरिक्त युद्धवीर के रूप में भी चित्रित हैं । तुलसीदास उन्हें अतुलित बलधामा घोषित करते हैं । सुंदरकाण्ड एवं लंकाकाण्ड के सत्तर प्रतिशत समर दृश्यों में महाबली हनुमान की महत्वपूर्ण भूमिका है ।

3.8.8. आपतकाल बांधव

हनुमानजी आपतकाल बांधव के रूप में सदा रामचन्द्रजी की सेवा में उपस्थित होते हैं । सुग्रीव मैत्री प्रसंग, सीतान्वेषण प्रसंग, संजीवनी आदि प्रसंगों में हनुमानजी राम लक्ष्मण आदि के लिए एक आपतकाल बांधव व स्वामिभक्त के रूप में उपस्थित हैं ।

अतः हनुमान एक आदर्श चरित्र बनकर पाठकों के सामने आता है ।

3.9. रावण

रामचरितमानस में रावण एक युद्धवीर, तपस्वी एवं भक्त के रूप में चित्रित हुआ है । मानसमें रावण राक्षसों का राजा है । मानस में वाल्मीकि रामायणवत् उसके चरित्र में अन्य विशेषताओं के साथ-साथ आरंभ से अंत तक पापाचार की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है ।

3.9.1. विवेकशील

मानस में चित्रित रावण के चरित्र में विवेक गुण दृग्गोचर होता है । लेकिन सीतापहरण कृत्य से उसके चरित्र को कलंक लगता है और विवेक की मात्रा कम होती जाती है । जब विभीषण पापकृत्य तजने का सुझाव देता है तब रावण विवेक भूलकर उसे निर्वासित कर देता है ।

3.9.2. युद्ध वीर

मानस में रावण महान युद्ध वीर के रूप में चित्रित है । सुर, नर, यक्ष, किन्नर, नाग सभी जातियों के वीरों को जीतनेवाले रावण के चरित्र में गोस्वामी वीरता का गुण अनेकों प्रसंगों में प्रदर्शित करते हैं ।

3.9.3. महाविद्यासाधक

मानस में रावण महान तपस्वी, विद्यासाधक एवं माया बल संपन्न वीर के रूप में चित्रित है । बाल्य में ही अपने भाईयों सहित तपस्या कर ब्रह्म से वह वरदान प्राप्त करता है । मानस में उसकी तप साधना से प्रसन्न ब्रह्मा उसकी आकांक्षा के अनुसार ही यह वर देता है कि नर को छोड़कर अन्य किसी से उसका वध नहीं होगा ।

3.9.4. माया शक्ति संपन्न

मानस में रावण महामाया शक्ति संपन्न विद्या साधक है । विद्या शक्ति से कई शक्तियों को रावणहस्तगत कर लेता है। मानस में रावण महामाया शक्ति संपन्न राक्षस वीर भी है । अपने सिरों को काटकर शिवजी के चरणों में समर्पित कर उनसे वरदान प्राप्त करता है। उसके सिर कट-कटकर पुनः पुनः फिर उत्पन्न होते हैं । मानस में भी रावण बहुरूपिणी विद्या प्रदर्शित करता है । राम पक्ष को सर्वत्र सहस्त्रों रावण दिखाई पड़ते हैं । माया शक्ति से रावण राम का कटा हुआ शीर्ष सीता को दिखाता है ।

3.9.5. संघर्षशील हृदय

मानस के रावण में संघर्षशील प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है । रावण के हृदय में इस प्रकार का संघर्ष उत्पन्न होता है कि यदि राम के हाथ से उसका वध हो जाये तो उसे मोक्ष मिलेगा । हो सकता है कि राम विष्णु का अवतार हो ।

राजनैतिक तथा कूटनीतिक उक्तियों से विभूषित परम कुलीन, वेदविद्, कर्मकाण्डी, तांत्रिक, ज्योतिर्विद, आत्माभिमानी, प्रतापी रावण को प्रतिनायक के पद पर तुलसीदास ने आसीन किया है । कारण है उसका अप्राकृतिक शरीर रचना और निरंकुश, अहंकारी, विलासी एवं तामसिक प्रवृत्ति ।

3.10. मंदोदरी

मंदोदरी पंच पतिव्रताओं में एक मानी जाती है । मानस की मंदोदरी वाल्मीकि रामामयण की मंदोदरी की भाँति प़रम पतिव्रता, विवेकशील, न्यायप्रिय, पितृ-भक्त, पुत्र-प्रेमी, वैराग्य की भावना से पूरित, कर्त्तव्यशील पुत्री एवं भक्ति भावना से परिपूर्ण पात्र है ।

3.11. मय

मानस में मय क्रियाशील पात्र के रूप में नहीं बल्कि एक उल्लिखित पात्र के रूप में हमारे सामने आता है । महान वास्तु शिल्पी मय देव नगरों का निर्माता है । रावण की लंका का निर्माण भी वही करता है । मानस में मय रावण का ससुर है और मंदोदरी उसकी पुत्री है । वह रावण का शुभचिंतक है ।

3.12. कुम्भकरण

अति विशाल परिपुष्ट शरीरवाला, अतिशय भोजन करनेवाला अत्यधिक विश्राम लेनेवाला, अतुलनीय बलशाली, मल्लयुद्ध विशारद,, दूरदर्शी, सत्वयुक्त तामसी प्रकृतिवाला, आध्यात्मिक, धीर, विवेकी तथा आत्मबली कुम्भकरण रावण का सहोदर भ्राता एवं राज्यपरिवार का प्रमुख सदस्य था । प्रशंसनीय है उसकी आत्मशक्ति, उसकी अविचल विवेकशक्ति, अपने मन बुद्धि तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण शक्ति । मदमत्त होते हुए भी पूर्ण संयमित रहता हे, उसका विवेक पूर्ण जागृत रहता है, उसकी बुद्धि पूर्ण व्यवस्थित रहती है ।

3.13. विभीषण

विभीषण रावण का विमाताजन्य सबसे छोटा भाई है और लंका के राजमद-मत्त राजपरिवार ही का सदस्य है । परंतु वह कांच के टुकड़ों में हीरा अथवा कौवों के बीच हँस की तरह अपना

एक अलग विशिष्ट चरित्र बनाए हुए है । साथ ही उसमें उच्च पैत्रिक संस्कृतियाँ भरी हुई हैं किंतु दुर्गुण नहीं । वह आदि से अंत तक एक निर्लिप्त, साधु एवं परम आध्यात्मिक प्रवृत्तिवाला गंभीर, विनीत, सत्यवादी, स्पष्टवक्ता, शिष्ट, नीतिज्ञ, विवकशील, सदाचारी, निर्भय, परोपकारी तथा वीर रूप में मानस में व्याप्त है ।

3.14. मेघनाद

लंका का युवराज, धनुर्विद्या में पारंगत नाना प्रकार के दिव्यास्त्रों का अधिकारी तथा उनका ज्ञाता, मायावी, मंत्र-तंत्र सिद्ध, परम पराक्रमी योद्धा के रूप में मेघनाद का चरित्र गोस्वामीजी द्वारा मानस में अंकित हुआ है ।

3.15. मारीच तथा कालनेमि

ये दोनों निसिचर पात्र हैं तथा मायावी के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं । ये छलकपट तथा छद्मवेष धारण करने की कला में निपुण हैं । जहाँ कालनेमी केवल वेष बदलता है वहीं मारीच दूसरा शरीर ही धर लेता है । मृग का । कालनेमी की कला गुप्तचरी कला है, मारीच का कर्म उसकी योगकला की प्रवीणता अथवा उसकी मंत्र सिद्धि प्रकट करता है । पर-काया प्रवेश योग के अंतर्गत आता है । कालनेमी तथा मारीच योगशास्त्र में प्रवीण तो थे ही, राजनीति के भी ज्ञाता तथा दूरदर्शी थे ।

3.16. सूर्पनखा

रामचरितमानस में सूर्पनखा एक अत्यंत काम वासनायुक्त, दुश्चरित्र, मायावी, पतित, खल नायिका के रूप में चित्रित है । जब श्रीराम, लक्ष्मण और सीता सहित पंचवटी में वास कर रहे थे, सूर्पनखा घूमते घामते वहाँ पहुँच जाती है और एक रूपवती नारी का स्वरूप धारण करके उनसे प्रणय याचना करती है । लक्ष्मण द्वारा अंग विच्छेद करके उसे दण्डित तब किया जाता है जब पुनः वह राक्षसी रूप में आकर अपनी कपटपूर्ण भावना को प्रकट कर

देती है । अपने नाक कान कटने के बाद तथा खरदूषन आदि के विनाश के बाद वह अपने प्रताड़न का दुखड़ा लेकर रावण के दरबार में उपस्थित होती है ।

3.17. त्रिजटा

अपने छोटे से प्रकरण में त्रिजटा स्पष्ट तथा एक परम सुहृद, भावुक, परोपकारी चरित्रवाली स्त्री सिद्ध है । वह श्री सीता की रखवाली तथा सेवा के लिए नियुक्ता निसिचरियों की टोली की नायिका है । जब अन्य राक्षसियाँ भाँति-भाँति से सीताजी को त्रसित करती हैं तब सीताजीका दुःख उससे सहा नहीं जाता है और वह उनको नानाप्रकार से भयभीत करके शांत कर देती है । वह अपने व्यवहार से सीताजी का हृदय जीत लेती है और उनकी प्रिय संगिनी बन जाती है ।

3.18. वाली

वाली बानर राज किष्किन्धा का अधिपति और परम पराक्रमी तथा बलशाली पात्र है । साथ ही वह निष्कपट, स्वच्छ हृदय का समदर्शी व्यक्तित्व वाला था । वह किसी भी युद्ध हेतु किए गए आह्वान या ललकार को तुरंत स्वीकारता था । वाली के संबंध में किम्बदन्ती है कि उसके सम्मुख उपस्थित होने पर शत्रु का आधा बल बाली में चला जाता था । शायद इसीलिए श्रीराम पेड़ की आड़ से वाली-सुग्रीव युद्ध के समय बाली पर वार करते हैं -

पुनि नाना विधि भई लराई । विटप ओर देखहिं रघुराई ।।

वाली का व्यक्तित्व अतिशय प्रभावकारी था । इतना कि उसके सम्मुख आने पर उसके प्रभाव स्वरूप शत्रु श्रीहीन बलहीन एवं उत्साहहीन हो जाता था ।

3.19. सुग्रीव

यह वाली का छोटा भाई था । यद्यपि पराक्रम और शक्ति

सुग्रीव में भी प्रचुर मात्रा में था किन्तु बाली तथा हनुमान आदि के तुल्य नहीं थी । सुग्रीव बाली द्वारा राज्य से निष्कासित था । उसने श्री राम की कृपा एवं उन्हीं के द्वारा बाली के मारे जाने पर किष्किन्धा का राज्य प्राप्त किया था । संयम भी सुग्रीव में कम ही था । विशिष्ट व्यक्तित्व का न होते हुए भी वह श्री राम का प्रमुख सहायक था ।

3.20. अंगद

वाली का सुयोग्य पुत्र तथा किष्किन्धा का युवराज था । वह अपने पिता की भाँति ही पराक्रमी, संयमी, निर्भीक, निःशंक तथा सर्वगुण संपन्न था । उसकी चातुरी, विद्वत्ता, राजनीतिज्ञता, कुटनीतिज्ञता, वाद-विवादपटुता, स्पष्ट वक्ता, स्वामी में अटूट श्रद्धा शक्ति तथा पौरूष अंगद-रावण संवादवाले प्रकरण में स्वप्रकाशित हैं ।

3.21. जामवंत

युग-युगान्तरिक दीर्घजीवी पात्र जो रामायण काल में वृद्धावस्था प्राप्त कर चुके थे । अपनी अवस्था, युग-युगानतर स्थिति और अपने पराक्रम का आभास वे स्वयं करा देते हैं -

जबहिं त्रिबिक्रम भये खरारी । तब मैं तरू न रहेउं
बलभारी ।।
बलि बांधत प्रभु बाढेउ । सो तनु बरनि न जाइ ।।
उभय घरी महुँ दीन्हीं । सात प्रदच्छिन धाइ ।।

इस वृद्धावस्था में भी एक ही लात में रावण जैसे दुधर्ष वीर को मूर्छित कर देने का सामर्थ्य रखते थे । पराक्रम तथा शक्ति के अतिरिक्त उनकी विद्वत्ता तथा नीतिज्ञता भी मानस में स्पष्ट हैं और इसी कारण वे सभी प्रकरणों में मन्त्री पद पर आसीन दिखलाई देते हैं ।

3.22. जटायु

एक गिद्ध पक्षी होते हुए भी मानवीय गुण संपन्न जटायु की सहृदयता, परोपकारिता, शक्ति तथा न्यायप्रियता थोड़े से ही प्रसंग में स्वयंसिद्ध है । एक अबला की आर्त पुकार पर वह द्रवित हो जाता है और वृद्ध होते हुए भी उसकी रक्षा हेतु रावण को उसके चोरी से तथा एकांत में अबला का अपहरण करने के लिए धिक्कारता हुआ उससे युद्ध ठान देता है । रावण को मार-मार कर क्षण भर के लिए मूर्छित तक कर देता है । अंत में इस परोपकारी कार्य में अपनी बलि दे देता है ।

3.22. शबरी

शूद्रवर्ण, आजन्म सेवा परायण परम भक्त के रूप में वर्णित है ।

3.23. तारा

किष्किन्धापति बाली की रानी जो एक पतिपरायण दूरदर्शी चतुर, सुन्दर, विदुषी के रूप में मानस में प्रदर्शित की गई है । खतरे का पूर्वाभास पाकर ही वह सुग्रीव की ललकार पर बाली को समझाते हुए युद्ध करने से रोकने का प्रयत्न करती है । राजमद में लिप्त सुग्रीव की सुस्ती पर लक्ष्मण के क्रुद्ध होकर किष्किन्धा में आने पर उनको शांत करने का कार्यभार तारा को ही सौंपा जाता है और वह कार्य कुशलतापूर्वक पूर्ण करती है ।

3.24. महाराज दशरथ

परम पराक्रमी सूर्य वंशीय दशरथ अयोध्या के राजा और मानस के नायक श्री राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुध्न के पिता थे । मानस के कथानक में वे अपने जीवन के अंतिम समय में प्रकट होते हैं। माने हुए पराक्रमी तथा धनुर्धर होने के नाते देवताओं की

भी संकटकाल में सहायता करते थे । पुत्र-प्रेम तथा उनकी सत्यनिष्ठा सर्वविदित है । अपनी की गई प्रतिज्ञा पालन करने हेतु वे अपना प्राण निछावर कर देते हैं ।

3.25. सुमंत्र

अयोध्या राज्य में मंत्री पद पर विभूषित सुमंत्र एक सज्जन तथा भावुक दूरदर्शी राजभक्त के रूप में चित्रित है । कैकेई के कोपभवन में महाराज दशरथ की दशा देखकर तथा कैकेई द्वारा राम को शीघ्र बुला लाने के लिए कहे जाने पर किसी षड़यंत्र का आभास पा लेते हैं -

चलेउ सुमंत्र राय रूख जानी । लखी कुचालु कीन्ह कछु रानी ।।

राज परिवार में उनकी अपार श्रद्धा थी । राजा तथा परिवार के किसी भी व्यक्ति के दुःख से अति पीड़ित हो जाते थे । सुमंत्र सारथि कला में प्रवीण थे ।

3.26. मिथिलेश जनक

राजा जनक मिथिला के राजा थे । वे पुत्रहीन थे । देवी कृपा से प्राप्त सीताजी को उन्होंने अपनी कन्या की तरह पाला । वे विख्यात ज्ञानी थे । उन्हें आत्मज्ञान प्राप्त था । समस्त विलासिताओं से घिरे रहने पर भी पूर्ण रूप से कमल पत्ते की तरह निर्लिप्त थे । इसीलिए वे विदेह की पदवी से विभूषित थे और इसी नाम से वे विख्यात थे ।

3.27. परशुराम

परम पितृभक्त, पराक्रमी एवं प्रज्ज्वलित अग्नि के समान क्रोधी मुनि के रूप में परशुराम मानस में बहुत थोड़े समय के लिए आते हैं । पिता के वे इतने भक्त थे कि उनकी आज्ञा से अपनी माता का ही सर इन्होंने काट लिया था । परशुराम की गुण

ग्राहकता भी प्रसिद्ध है । जब उन्हें राम के गुणों का आभास हो जाता है तब वे अपने क्रोध को शमन कर शांतिपूर्वक विदा माँगते हैं ।

3.28. निषाद

अयोध्या राजसीमा के अंदर स्थित श्रृंगबेरपुर वासी निषाद एक राजभक्त के रूप में हमारे सामने उस समय आता है जब श्रीराम अपनी वन-यात्रा के प्रथम विश्राम के बाद दूसरी संध्या को श्रृंगबेरपुर पहुँचते हैं । मानस में निषाद का संपूर्ण आख्यान, उसकी श्रीराम के प्रति श्रद्धाभक्ति से ही ओतप्रोत है । मानस, निषाद की इस अटूट और असीम श्रद्धाभक्ति का उत्कट प्रमाण उस समय प्रस्तुत करता है जब कैकेई पुत्र भरत को गंगा पार करने से रोकता है यह सोचकर कि भरत उसके श्रद्धेय (राम) की विपत्ति का कारण बन सकता है । इस श्रद्धालु की चतुरता मनमोहक एवं हृदयाकर्षक बन जाता है जब अपने प्रभु श्रीराम का चरणोदक प्राप्त करना चाहता है और उनके पार जाने के लिए नाँव माँगने पर कहता है -

मागी नाव न केवटु आना । कहइ तुम्हार मरम मैं जोता ।।
चरन कमल रज कहुँ सबु कहइ । मानुष करन मरि कछु अहई ।।
छुवत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन ते न काठ कठिनाई ।।

यूँ कहकर कि-आपके पद-रज के प्रभाव से मेरी नाँव मुनि-पत्नि बन जायेगी, मैं बेकार हो जाऊँगा, परिवार पालन न कर सकूँगा - उसने श्रीराम के पाँवों को धोने की आज्ञा माँगी और इस चरणामृत को पीकर वह धन्य हो गया ।

3.29. शत्रुघ्न

महाराज दशरथ के पुत्र तथा श्रीराम, भरत तथा लक्ष्मण के

भाई होने के कारण वे सर्वगुण संपन्न थे । उनका अन्याय बर्दाशत न करने का स्वभाव मंथरा की मरम्मत से स्पष्ट है ।

3.30. महारानी कौशल्या

अवधपति दशरथ की ज्येष्ठतम रानी, कौशल्या वास्तव में सारी कुशलताओं की आलय थीं । तीनों रानियों में ये पद में ही श्रेष्ठ नहीं वरन् गुणों में भी सर्वश्रेष्ठ थी । नीति, ज्ञान आदि गुणों से पूर्ण कौशल्या धैर्य, सहनशीलता और वात्सल्य की प्रत्यक्ष मूर्ति थी । पुत्र राम के राज्याभिषेक के स्थान पर जब वन-गमन का समाचार मिलता है तब कौशल्या पर तो मानो बज्राघात पड़ता है । पर उस अवर्णनीय प्रहार को जिस शांति से सह लेती हैं वह अतुलनीय है । कौशल्या की इस धीरता तथा सहनशीलता के आगे पृथ्वी भी झुक जाती है ।

3.31. सुमित्रा

मानस में सुमित्रा एक परम नीतिज्ञ, त्यागी तथा सुशील विदुषी के रूप में चित्रित हैं । जब उनके पुत्र लक्ष्मण उनसे वन जाने की आज्ञा प्राप्त करने जाते हैं और सब कथा कहते हैं तब माँ थोड़ी देर के लिए चकरा तो अवश्य जाती है पर अपने परंपरागत राज्याधिकारी के प्रति किये जा रहे अन्यायपूर्ण कार्य को समझकर राम और सीता के प्रति अपनी ममता को प्रकट करती हुई क्या कहती हैं और किस प्रकार उपदेश देती हैं निम्न प्रकरण में द्रष्टव्य है -

धीरत धरेउ कुअवसर जानी .....
जौं पै सीय राम वन जाहीं । अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ।

3.32. कैकेई

मानस का अवलोकन करने पर कैकेई एक परम स्वार्थी पात्र

के रूप मं दिखलाई पड़ती है । वह अपने स्वार्थ तथा अहं के पीछे मदान्ध होकर सारी अयोध्या का सत्यानाश कर देती है । कैकेई की निर्भीकता, उसकी न्यायप्रियता, उसका वासल्य, उसका युद्धज्ञान मानस के कई प्रसंगों में परिलक्षित होते हैं । दासी की प्ररोचना में आकर उसने अपने उच्च गुणों को भुला दिया जिससे उसे वैधव्य मिला, पुत्र ने धिक्कारा, घोर लांछन प्राप्त किया और सर्वदा के लिए कलंकित हो गयी । अपनी इस गलती के लिए कैकेई आजीवन पश्चाताप की अग्नि में जलती रही ।

3.33. मंथरा

निसिचरी समाज की सूर्पनखा की भांति मंथरा इस मानव-समाज में एक खलनायिका है । वह कैकेई की निजी दासी थी । कपटपूर्ण बातों से कैकेई को फुसला कर अपने को एक कृट्टिनी सिद्ध करती है । संक्षेपतः हम कह सकते हैं - मंथरा एक शूद्रवर्ण की नीच दासी थी । दूसरे उसके चरित्र से उसकी स्वाभिमानी तथा उसकी कूटनीतिज्ञता तथा वाक चातुर्य तो प्रकट होता ही है ।

3.34. मिथिलेशिनी रानी सुनयना

रानी सुनयना एक वात्सल्यपूर्ण हृदय वाली राजोचित गुणों से युक्त, परम विदुषी के रूप में चित्रित हैं । सीता स्वयंवर के समय कोमल तथा अल्पवयस्क श्रीराम को कठोर धनुष के पास देखकर विह्वल हो जाती है । पंचवटी में अवध की रानियों के मध्य विद्वत्तापूर्ण वार्तालाप करती है और राजोचित व्यवहार करती हैं ।

3.35. निष्कर्ष

पात्र और उनके चरित्र के प्रस्तुतीकरण में आदर्श-निर्वाह का, शिष्टाचार, शालीनता और मर्यादा का ध्यान तुलसी ने सर्वत्र

रखा है । तुलसी ने हमें ऐसे ही पात्र प्रदान किये हैं जो आदर्श जीवन के मापदण्ड देने में समर्थ हैं । यही तुलसी की श्रेष्ठता है । तुलसी दासजी ने समाज को यह आश्वासन दिया कि रावणों का नाश निश्चित है, जब लोक में रावण सदृश अत्याचारी और अन्यायी राजा दिखाई दें तब समझ लेना चाहिए कि राम का आविर्भाव होने ही वाला है । परंतु रावण का नाश करने के लिए राम जैसी वीरता व पौरुष चाहिए, हनुमान की भाँति निःस्वार्थ भाव से कर्तव्य पालन करना होगा, लक्ष्मण की भाँति जूझना होगा, कठोर व्रत का पालन करना होगा, भरत जैसा त्याग करना होगा । चरित्र-चित्रण एवं शील निरूपण द्वारा लोक मंगल की ऐसी साधना अन्यत्र दुर्लभ है । उन्होंने आत्म पक्ष और लोकपक्ष का जो समन्वय प्रस्तुत किय है, वह अप्रतिम है । यह कथन अक्षरशः सत्य है कि ''तुलसी के पात्र कोरे आदर्शवादी नहीं हैं । उनमें जीवन के यथार्थ पक्ष भी प्रकट हुए हैं ।''

3.36. सारांश

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कथानुसार ''रस संचार से आगे बढ़कर हम काव्य की उस उच्च भूमि में पहुँचते हैं जहाँ मनोविकार अपने क्षणिक रूप में ही न दिखाई देकर जीवन व्यापी रूप में दिखाई पड़ते हैं । इसी स्थायित्व की प्रतिष्ठा द्वारा शील निरूपण और पात्रों का चरित्र-चित्रण होता है ।'' कहने की आवश्यकता नहीं है कि तुलसी ने यही किया और इस प्रकार वे हिन्दी काव्य-क्षेत्र में एक नवीन आदर्श को लेकर अवतरित हुए । गोस्वामी जी के पहले हिन्दी का कोई भी प्राचीन कवि इस क्षेत्र में नहीं दिखाई पड़ता । वीरगाथा काल में चन्दबरदाई ने प्रबंध रचना अवश्य की परंतु उनके काव्य में वीरोल्लास की प्रधानता रही । शील निरूपण एवं चरित्र-चित्रण के मनोविकार पक्ष को जीवन व्यापी स्थायी स्वरूप प्रदान नहीं किया जा सका । प्रेम कथाकार मलिक मुहम्मद जायसी ने भी प्रबंध काव्य की रचना की । वे मात्र प्रेम पथ का निदर्शन कर सके । उनके आख्यानों में मनोविकारों के

इतने भिन्न स्वरूप नहीं दिखाई पड़ते जिन्हें हम किसी व्यक्ति का चरित्र अथवा शील कह सकें । गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के भीतर मनोविकारों की व्यंजना कर चरित्रों को एक स्थायित्व प्रदान किया है । राम, भरत, लक्ष्मण, दशरथ, रावण, विभीषण, हनुमान, सीता, कौशल्या, कैकेयी आदि कई ऐसे पात्र हैं जिनके स्वभाव की विशेषता कई अवसरों पर प्रदर्शित करके उनके आचरण एवं भावों की एकरूपता द्वारा शील निरूपण और चरित्र-चित्रण का सफल निर्वाह किया है ।

उनके पात्र मात्र कवि-कल्पना की उपज नहीं है, विशिष्ट या सामान्य पात्र हो, उनका मानसिक पक्ष मानवीय मनोवृत्तियों से संघटित है । अतः वे देवता, राक्षस, मानव या वानर होते हुए भी स्वाभाविक प्रवृत्तियों से परिचालित हैं । भक्त हो या भगवान सत् पात्र हो या असत् पात्र, आदर्श व्यक्ति हो या साधारण मानव तुलसी ने सर्वत्र मनोवैज्ञानिक धरातल पर ही उनका चरित्र-चित्रण किया है ।

तुलसी के पात्र तीन प्रकार के हैं - ये पात्र तीन श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं, सात्विक, राजस और तामस । सात्विक पात्रों को हम आदर्श पात्र कह सकते हैं । इस वर्ग के प्रायः सभी पात्र निर्दोष एवं अनुकरणीय हैं । इन्हीं के माध्यम से गोस्वामीजी ने अपने जीवनादर्शों एवं जीवन के मूल्यों को प्रस्तुत किया है । राम, भरत, लक्ष्मण, सीता एवं हनुमान इस वर्ग के अंतर्गत आते हैं । राजस पात्र के अंतर्गत सामान्य पात्र आते हैं । इस वर्ग में दशरथ, विभीषण, सुग्रीव और कैकेयी आते हैं । इन पात्रों में तुलसी ने आदर्श और यथार्थ का निर्वाह किया है । ये पात्र मानवोचित दुर्बलताओं से युक्त होने के कारण हमारे अधिक निकट दिखाई देते हैं । तामस पात्र वे पात्र हैं जो खल पात्र हैं । इस दृष्टि से रावण तथा समस्त राक्षस तामस पात्र कहे जाएँगे ।

उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठापना एवं श्रेष्ठ जीवन मूल्यों का निर्माण तुलसी के चरित्र-चित्रण की पहचान है । आदर्श चरित्रों की

सृष्टि कर समाज को एक सही दिशा की ओर ले जाना तुलसी के काव्य का लक्ष्य रहा ।

संत स्वभाव के अनुरूप तुलसीदास ने किसी के दुर्गुणों का वर्ण्न करने में तत्परता नहीं दिखाई । लेकिन गुणों को उन्होंने द्विगुणित करके सामने रखा है । किसी भी पात्र के गुणों की उपेक्षा उन्होंने नहीं की वरन् दुर्गुणों पर पर्दा डालने का प्रयास अवश्य किया है । यही कारण है कि खल नायक के चरित्रों पर भी कलंक नहीं लगने पाता और उनके चरित्र, परिस्थिति के अनुरूप उत्कृष्ट बन जाते हैं । परब्रह्म रामचन्दजी तुलसीदास के इष्ट देव थे ही । सहज ही उनमें अलौकिकता का समावेश कराके उनके गुणों का बखान करते नहीं थकते । लेकिन साथ ही प्रतिनायक रावण के चरित्र की उज्ज्वलता भी उनके द्वारा अंकित है, जो उनकी निष्पक्षता सिद्ध करती है । इनके जो चरित्र महान हैं, वे इतने महान हैं कि प्रायः अद्वितीय रूप से महान बन गए हैं - राम, भरत, हनुमान, सीता के जोड़ के चरित्र अन्यत्र दुर्लभ हैं । इसी प्रकार दुष्ट पात्र हैं उनकी दुष्टता की समानता भी नहीं हो सकती है ।

3.37. सम्भाव्य प्रश्न

1. गोस्वामी तुलसीदास के शील निरूपण और चरित्र-चित्रण की विशेषताओं का आकलन कीजिए ।
2. ''तुलसी के पात्र कोरे आदर्शवादी नहीं हैं, उनमें जीवन के यथार्थ पक्ष भी प्रकट हुए हैं ।'' प्रमुख पात्रों के आधार पर इस कथन की समीक्षा कीजिए ।
3. शील, शक्ति और सौंदर्य के रूप में तुलसी के राम की चरित्रगत विशेषताओं का विश्लेषण कीजिए ।
4. तुलसी के सात्विक पात्रों पर एक लेख लिखिए ।
5. तुलसीदास के तामस पात्र रावण की चारीत्रिक विशेषताओं का समुद्घाटन कीजिए ।

NOTES

NOTES

इकाई चार : तुलसीदास की भक्ति भावना

इकाई की रूपरेखा

4.0. प्रस्तावना

4.1. उद्देश्य

4.2. भक्ति का स्वरूप विवेचन

4.3. प्रेम तथा श्रद्धा का योग

4.4. गोस्वामी तुलसीदास और भक्ति परंपरा

4.5. भक्तों के दो वर्ग

4.6. लोक-रक्षक एवं लोक-रंजक भगवत्-भक्ति

4.7. गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति भावना का विश्लेषण

4.8. आलंबन में अनन्त सौंदर्य, अनन्त शक्ति और अनन्त शील की प्रतिष्ठा

4.9. दैन्य

4.10. पूर्ण-समर्पण

4.11. अनन्यता

4.12. निष्कामता

4.13. धर्म या सदाचरण के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति

4.14. शरणागति भक्ति

4.15. भक्ति की प्राप्ति प्रभु कृपा पर अवलंबित है

4.16. भक्ति का फल

4.17. तुलसी की उपासना पद्धति तथा भक्ति भावना

4.18. राम-नाम की महिमा गान

4.19. श्री राम-विष्णु के अवतार रूप में

4.20. श्रद्धा-बुद्धि समन्वित भक्ति के उन्नायक

4.21. कामना का वर्जन

4.22. राम के अलौकिक कृत्यों का वर्णन

4.23. राम के पुरूषोत्तम रूप का वर्णन

4.24. निश्छल प्रेम की याचना

4.25. तुलसी अपने भगवान को बाहर जगत् में देखते थे

4.26. तुलसी की भक्ति-पद्धति का आधार सेवा-भाव है

4.27. लोकरक्षा और लोकरंजन तुलसी की भक्ति-पद्धति के अभिन्न अंग हैं

4.28. गोस्वामीजी युग-द्रष्टा होने के साथ-साथ युग स्रष्टा भक्त थे

4.29. तुलसी की भक्ति पद्धति में समाहित लोक-कल्याण एवं सामाजिक संगठन के आधार

4.30. नवधा भक्ति

4.30.1. श्रवण

4.30.2. कीर्तन

4.30.3. स्मरण

4.30.4. पादसेवन

4.30.5. अर्चन

4.30.6. वन्दन

4.30.7. दास्य

4.30.8. सख्य

4.30.9. आत्म निवेदन

4.31. भक्ति के साधन

4.32. निष्कर्ष

4.33. सारांश

4.34. सम्भाव्य प्रश्न

4.0. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में तुलसीदास की भक्ति भावना पर समग्र रूप से विचार किया गया है । तुलसीदास की भक्ति भावना के विभिन्न आयामों से पाठकों का परिचय कराया जा रहा है । तुलसीदास पहले भक्त थे उसके उपरांत कवि, समन्वयवादी, दार्शनिक आदि । तुलसी समग्र जग को राममय देखते थे । प्रस्तुत घटक में भक्ति के स्वरूप, गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति-भावना का विश्लेषण, तुलसी की उपासना पद्धति, तुलसी की भक्ति पद्धति का आधार-सेवा भाव व लोक कल्याण तथा नवधा-भक्ति, भक्ति के साधन आदि से पाठकों का परिचय कराया गया है ।

4.1. उद्देश्य

गोस्वामी तुलसीदास ने प्रत्येक काव्य ग्रंथ में जीवन का चरम फल राम-भक्ति की प्राप्ति बताया है । उनके लिए राम-भक्ति साधन व साध्य दोनों है । अतः जीव उससे क्षण भर भी विलग नहीं हो सकता । यदि वह ऐसा करता है तो कष्टों को भोगता है । उन्होंने 'रामभक्ति' को मोक्ष से भी बढ़कर बताया है । इतना ही नहीं राम से बढ़कर राम के नाम को और राम से अधिक राम के सेवक को । उनके राम धर्म प्रतीक हैं । ऐसे राम और राम की भक्ति की ओर समग्र मानव जाति को उन्मुख करना ही प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य है ।

4.2. भक्ति स्वरूप विवेचन

माहात्म्य के ज्ञान से उत्पन्न सुदृढ़ स्नेह का नाम भक्ति है । परमात्मा के प्रति जब पूर्ण समर्पण की भावना जागृत हो तब भक्ति-भावना का उदय होता है । आचार्य पं.रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, ''धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति है । धर्म हे ब्रह्म के, सत्वस्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति जिसकी असीमता का आभास अखिल विश्व स्थिति में मिलता है ।

4.3. प्रेम तथा श्रद्धा का योग

शांडिल्य, नारद आदि भक्तों ने भगवान् के प्रति परम प्रेम को भक्ति कहा है । तुलसी के मतानुसार भी भक्ति प्रेमस्वरूप है । राम के प्रति प्रीति ही भक्ति है । इसी तरह अपने इष्ट देवता की आनन्दपूर्ण स्वीकृति श्रद्धा को जन्म देती है । जहाँ प्रेम, सौंदर्य या रूप सापेक्ष होता है वहीं श्रद्धा, गुणों पर आश्रित है । गुणों में भक्ति और शील का सम्मिश्रण होता है । अतः भक्ति के पूर्ण प्रकर्ष के लिए भक्त आराध्य में अनन्त सौंदर्य, अनन्त शक्ति तथा अनन्त शील का सम्मिश्रण होता है । अतः भक्ति के पूर्ण प्रकर्ष के लिए भक्त आराध्य में अनन्त सौंदर्य, अनन्त शक्ति तथा अनन्त शील की अपेक्षा करता है । जब मन किसी की श्रद्धा करने में तत्पर होता है तब उसमें दीनता तथा लघुता का भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है । इसी हेतु भक्ति के परिपाक के लिए प्रेम के अतिरिक्त आराध्य के महत्व तथा अपने दैन्य का अनुभव भी आवश्यक तत्व बन जाते हैं ।

4.4. गोस्वामी तुलसीदास और भक्ति परंपरा

तुलसीदासजी के आविर्भाव का समय भारतीय समाज के लिए, विशेषकर उत्तर भारत के हिन्दू समाज के लिए निराशा का युग था । सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से समाज का पतन हो रहा था । चारों ओर घृणा, द्वेष, कलह, अत्याचार, अनाचार का साम्राज्य था । लगभग दो सौ वर्षों से संत और भक्तजन समाज के सुधार का प्रयत्न करते आ रहे थे । इन्हीं संतों की श्रेणी में गोस्वामीजी का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है ।

4.5. भक्तों के दो वर्ग

भक्तों का पहला वर्ग था प्राचीन भागवत-संप्रदाय के नवीन विकास में व्यस्त संतों का जो वेद-शास्त्र सम्मत संप्रदायों की वैष्णव भक्ति पर चल रहे थे । इनकी भक्ति का आधार भगवान का

लोक-धर्म-रक्षक और लोक-रंजक स्वरूप था । दूसरे दल में निर्गुण भक्तों का समावेश था जो लोक धर्म से उदासीन, ज्ञान-विज्ञान के विरोधी तथा शास्त्र-सम्मत समाज व्यवस्था से दूर रहते थे ।

4.6. लोक-रक्षक एवं लोक रंजक भगवत् भक्ति

भक्त कवियों ने अपने आराध्यों की उस रूप की प्रतिष्ठा की जिसमें किसी जाति एवं समाज में नव-जीवन-संचार की शक्ति समाहित रहती है । सूर व तुलसी जैसे भक्त कवियों ने भगवान की भक्ति के सुधारस से सींचकर, मुरझाते हुए हिन्दू-जीवन को फिर से सरस और सुहाना बनाया । तुलसी ने श्रीराम का लोक-व्यापार व्यापी मंगलमय रूप दिखाकर जनता में आशा और शक्ति का संचार किया ।

4.7. गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति-भावना का विश्लेषण

भक्ति-भावना के आवश्यक अवयव हैं -

(क) आलंबन में अनन्त सौंदर्य, अनन्त शक्ति एवं अनंत शील की प्रतिष्ठा

(ख) दैन्य

(ग) पूर्ण समर्पण

(घ) अनन्य प्रेम

(ङ) निष्कामना

(च) धर्म अथवा सदाचरण के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति

अब हम देखेंगे कि तुलसी की भक्ति-भावना में उक्त अवयवों का प्रस्फुटन किस प्रकार हुआ है -

4.8. आलंबन में अनन्त सौंदर्य, अनन्त शक्ति और अनन्त शील की प्रतिष्ठा

गोस्वामीजी के इष्टदेव श्रीराम हैं । उनके राम अनन्त सौंदर्य के पुँज हैं । तीनों लोकों के सौंदर्य का चरम उत्कर्ष उनके रूप में अभिव्यक्त होता है । तुलसी के राम सौंदर्य के सार हैं -

नील सरोज नीलमणि नील नीर घर श्याम ।
लाजहिं तन सोभा निररिव कोटि कोटि सतकाम ।।

राम की स्तुतियों में उनका जो नखशिख वर्णन है वह अनन्त सौंदर्य का निरूपण करनेवाला है ।

वन जाते हुए राम के जिस सौंदर्य का वर्णन गोस्वामीजी ने किया है वह स्पृहणीय है । ऐसी अनन्त रूपराशि के सामीप्य लाभ के लिए, उसके प्रति सुहृद भाव प्रदर्शित करने के लिए जी ललचता है - कहिहै जग पोच, न सोच कछु, फल लोचन आपन तौ लहिहैं ।

राम की शक्ति भी असीम है । त्रिलोक-विजयी खरदूषण एवं रावण सदृश महाबली राक्षसों को मारकर वह पृथ्वी का भार हलका करनेवाले हैं । तुलसी के राम के शील का भी कोई सामना नहीं कर सकता, वह अद्वितीय हैं । राम अनन्त शील की साक्षात् मूर्ति हैं । दया, दाक्षिण्य, कृपा, क्षमा, संकोच, कृतज्ञता आदि गुणों की तो वे खान हैं । उनके प्रति यदि कोई रत्तिभर भी उपकार कर देता है तो वह उसको पर्वत सदृश मानते हैं । उन्होंने हनुमान से कई बार कहा है कि "मैं तुमसे उऋण नहीं हूँ, तू ही मेरा बोहरा है, चाहे तो रूक्का लिखवाले ।" और खुद का यह हाल है कि विभीषण को आते ही लंका का राजा बना देते हैं और मन में यही सोचते हैं कि इसको कुछ भी नहीं दे पाया । यह बेचारा न मालूम क्या-कया आशाएँ लेकर आया होगा, परंतु मैं इसको कुछ दे ही नहीं सका । देखिए राम के ये शील-समन्वित मनोभाव -

जो संपदा सिव रावनहिं दिए रीन्ह दस माथ ।
सो संपदा विभीषनहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ ।।

श्रीराम के इस शील के मनोहारी रूप को देखकर मनुष्य उनकी ओर अनायास ही आकर्षित हो जाता है । वह अपनी वृत्तियों को उसके मेल में देखना चाहता है और अंत में भक्ति का अधिकारी बनता है ।

परिहरि देह-जनित चिंता दुःख सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि-भक्ति लहौंगो ।।

4.9. दैन्य

महत्त्व की अनुभूति भक्ति का मूल आधार है । दैन्य भक्तों का बहुत बड़ा बल है । भक्त, प्रभु के महत्त्व का वर्णन करते नहीं थकते, साथ ही साथ वह अपना लघुत्व-वर्णन करते हुए संतोष का अनुभव करते हैं -

राम सों बड़ो है कौन, मो सों कौन छोटो ?
राम सों खरो है कौन,मो सौ कौन खोटो ?

भक्त अपने दोषों को ढूँढ-ढूँढ कर निकालते हैं और उन्हें जगजाहिर भी करते हैं । इस उच्च मनोभूमि की प्राप्ति अत्यंत कठिन है क्योंकि लोगों की सामान्य प्रवृत्ति ठीक इसके विपरीत ही होती है । स्वदोषानुभूति की इस वृत्ति की प्राप्ति केवल दैन्य-भाव-भक्ति से ही हो सकती है ।

4.10. पूर्ण समर्पण

भक्त अपने लघुत्व को भाँपकर प्रभु के शरण में आ जाता है । अपने को पूर्ण-रूपेण भगवान् के चरणों में अर्पित कर देता है । प्रभु की कृपा पर ही उसका मोक्ष निर्भर करता है । तुलसी ने इसी प्रकार के भाव अपनी रचनाओं में व्यक्त किए हैं -

कहाँ जाउँ, कासों कहौं और ठौर न मेरो ।
जनम गँवायों तेरेहि द्वारा मैं किंकर तेरो ।
प्रन कर हौं हठि आजु तें राम द्वारा परयो हौं ।
'तू मेरो' यह बिन कहै उठिहौं न जनम भरि ।
प्रभु की सौं करि निवरयोहौं ।

4.11. अनन्यता

तुलसी राम के अनन्य भक्त हैं । राम उनके लिए माता,

पिता, गुरू, स्वामी, सखा आदि सब कुछ हैं । उन्होंने तो स्पष्ट ही कहा है - मेरे तेरे उनके नाते हैं, जो अच्छा लगे, वह मान ले । उनकी तो मान्यता ही यह है कि ''जाउँ कहाँ तजि चरन तिहारे' अथवा ''जरि जाउँ सो जीह जो जाँचत औरे ।''

उनके जीवन से संबंधित एक किंवदन्ती अत्यंत प्रसिद्ध है । वह एक बार वृंदावन गए । वहाँ उन्होंने श्रीकृष्ण की प्रतिमा से कहा कि 'तुलसी मस्तक तक नवै जब धनुषबान लेउ हाथ ।'' कहते हैं मुरलीधर श्याम की मूर्ति धनुर्धारी राम की मूर्ति बन गई । अनन्य प्रेम का आदर्श, गोस्वामीजी ने, चातक प्रेम रूप में भी प्रस्तुत किया है । घन और चातक के प्रेम को लक्ष्य करते हुए उन्होंने अनेक सुन्दर उक्तियाँ कहीं है -

एक भरोसो, एक बल एक आस विस्वास ।
एक राम धनस्याम हित चातक तुलसीदास ।

उनकी तो सुदृढ़ धारणा है कि -

गति रामहिं सों मति रामहिं सों रहि
राम सों रामहिं को बल है ।
सबकी न कहै तुलसी के मते
इतनी जग-जीवन को फल है ।

4.12. निष्कामता

तुलसी की भक्ति निःस्वार्थ है । तुलसी राम से भक्ति केवल इसलिए करते हैं कि राम उन्हें अच्छे लगते हैं, इसलिए नहीं कि राम उन्हें बदले में मुक्ति प्रदान करेंगे । यथा -

जो जगदीस तौ अति । भलो जो महीस बड़-भाग ।
तुलसी चाहत जनम भरि, राम चरन अनुराग ।।

भक्त के लिए भक्ति का चरम फल भक्ति है । तुलसी के भरत की वाणी में भक्ति की यह निष्कामना मुखरित हो उठी है -

अरथ न धरम न काम रूचि गति न चहहूँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन ।

4.13. धर्म या सदाचरण के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति

शील और सदाचार का नित्य संबंध तुलसी ने बड़ी ही भावूकता के साथ व्यक्त किया है । उनका कहना था कि शील और सदाचार की प्रतिष्ठा के द्वारा मनुष्यता को पहुँचा हुआ हृदय राम-भक्ति के प्रति अवश्य आकर्षित होगा -

सुन सीतापति सील सुभाउ ।
मोद न मन, तन पुलक नयन जल सौ नर केहर खाउ ।

गोस्वामीजी का विश्वास था कि जब मन सुशीलता की ओर ढल जाता है, तब भक्ति की प्राप्ति होती है । यथा -

''तुम अपनायो तब जानिहों जब मन फिरि परिहै ।''

गोस्वामीजी के मतानुसार धर्म का विरोध ही वस्तुतः राम का विरोध ह, जिसे राम प्रिय नहीं उसको धर्म प्रिय नहीं । इसीसे उन्होंने कहा -

जाके प्रिय न राम वैदेही ।
सो नर तजिय कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ।।

डॉ. रामकुमार वर्मा का यह विचार कि - ''भक्ति की सर्वोच्च साधना ही तुलसी के धर्म की मर्यादा है '' - अक्षरशः सत्य है ।

4.14. शरणागति भक्ति

राम के शील के अंतर्गत 'शरणागत की रक्षा' को तुलसी ने बहुत प्रधानता दी है । इसका तात्पर्य यह है कि बड़े से बड़ा पापी भी रामभक्ति से अपने सुधार और उद्धार की आशा कर सकता है । इस प्रकार, गोस्वामी जी द्वारा प्रतिपादित राम भक्ति वह भाग है जिसका संचार होते ही अंतः करण शुद्ध और मन निर्मल हो जाता है । अपने इस सिद्धांत का प्रतिपादन तुलसी ने कई स्थलों पर किया है -

तुलसीदास ब्रत दान ग्यान तप सुद्धि हेतु श्रुति गावै ।
रामचरन-अनुराग-नीर बिनु मल अति नाल न पावै ।

जब तक भक्ति न हो तब तक सदाचार में दृढ़ता नहीं आ सकती है । उनका स्पष्ट मत है कि भक्ति बिना शील आदि समस्त गुण निराधार एवं नीरस हैं -

सूर सुजान सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरू आई ।
विनु हरिभजन इन्द्रासन के फल तजत नहीं करूआई ।।
कीरति कुल करतूति भूति भलि सील सरूप सलोने ।
तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने ।।

4.15. भक्ति की प्राप्ति प्रभु कृपा पर अवलंबित है

भक्ति की प्राप्ति साधन साध्य न होकर प्रभु की कृपा पर अवलंबित है । तुलसी भगवत्कृपा को ही सर्वस्व मानते हैं -

यह गुन साधन तें नहिं होई ।
तुम्हरी कृपा पाउ कोइ कोई ।

अथवा

जाने बिनु भगति न जानिवो तिहारे हाथ,
समुझि सयाने नाथ पगनि परति ।

4.16. भक्ति का फल

भक्ति की आनन्दमयी प्रेरणा से मनुष्य संत पद को प्राप्त होता है । शील के प्रति उसकी सहज प्रवृत्ति हो जाती है -

भए सब साधु किरात फिरातिनि,
रामदरस मिटि गई कलुषाई ।

4.17. तुलसी की उपासना पद्धति तथा भक्ति भावना

तुलसीदास की भक्ति के आलम्बन श्रीराम की प्राप्ति वाल्मीकी रामायण से हुई । तुलसीदास पर स्वामी रामानन्दजी के राम भक्ति पद्धति का प्रभाव पड़ा । अन्य आचार्य जहाँ ब्रह्म के

निगुर्णन पक्ष पर बल देते थे, तुलसी ने वहीं रामानन्दजी द्वारा प्रणीत सगुण भक्ति को अपनाया । समन्वयवादी होने के नाते उन्होंने निर्गुण भक्ति को भी नहीं नकारा -

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु तम बिनु कहै प्रकास ।
निर्गुण कहै सगुण बिनु सो गुरु तुलसीदास ।

किंतु ब्रह्म के सगुण रूप को अधिक महत्त्व देते रहे -

''पैज परे प्रहलादहुँ को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिए तें ।''

4.18. राम-नाम की महिमा गान

रामानन्द की भाँति तुलसी ने राम-नाम की महिमा गायी -

निरगुन तें एहि भाँति बइ नाम प्रभाउ अपार ।
कहउँ नामु बड़ राम ते निज विचार अनुसार ।।

4.19. श्री राम-विष्णु के अवतार रूप में

तुलसी के राम पूर्ण परब्रह्म परमात्मा एवं विष्णु के अवतार हैं । वह भक्तजन एवं सज्जनों के कष्ट-निवारण के लिए अवतार धारण करते हैं -

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार ।

उनके ब्रह्म रामावतार का कारण अधर्म का निवारण करके धर्म स्थापना है -

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु ।

सगुण भक्ति का मार्ग भी कठिन है । तुलसी जानते हैं कि ब्रह्म के नर लीलाओं को देखकर साधारण मानव के मन में भाँति-भाँति की शंकाएँ उठती हैं, ईश्वर में लौकिकता का अंश देखकर भक्त, भ्रमित हो सकता है । शिव-पार्वती-संवाद में तुलसी ने बार-बार इस संदेहशीलता की ओर संकेत किया है । उनका मत है कि

निर्गुण रूप सुलभ अति सगुण जानि नहिं कोय ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होय ।

4.20. श्रद्धा-बुद्धि समन्वित भक्ति के उन्नायक

तुलसी की भक्ति-भावना में श्रद्धा एवं पूज्य बुद्धि का सम्मिश्रण दीखता है । उनकी भक्ति-भावना लोक मर्यादा को लेकर चलती है । उनकी भक्ति का फल भक्ति है । तुलसी संत-स्वभाव की प्राप्ति भक्ति-भावना की सबसे बड़ी अपलब्धि मानते हैं -

श्री रघुनाथ-कृपालु.कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो ।

\- - - - - - - -

तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि-भक्ति लहौंगो ।

वह अखिल विश्व में ब्रह्म के सद्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति का सरस आभास पाते हैं । इसी कारण जीवमात्र को प्रणाम करते हैं और उसकी सेवा को राम-भक्ति का फल मानते हैं -

सो अनन्य गति जाकें मति न टरै हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचररूप स्वामि भगवंत ।

इस भक्ति की प्राप्ति साधन-साध्य न होकर, प्रभु की कृपा पर अवलंबित है ।

4.21. कामना का वर्जन

तुलसी ने भक्तों को समझाया कि राम-भक्ति की प्राप्ति के लिए पूर्णतया कामना वर्जन करना पड़ेगा -

जाकहँ कछु न चाहिए तुम सन सहज सनेहु ।
बसहु निरन्तर तासु उर सो राउर निज गेहु ।

उन्होंने बार-बार लिखा है कि भक्त जब सकल कामना रहित हो जाता है तभी उसको भक्ति की, मोक्ष की, सुगति की अथवा भगवत्कृपा की प्राप्ति होती है ।

4.22. राम के अलौकिक कृत्यों का वर्णन

जन्म के समय पर ही तुलसी राम के ब्रह्मत्व, उनके अलौकिकत्व की चर्चा करते हैं -

''जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक विश्राम ।''

गोस्वामी श्रीराम के चरित्र का सविस्तार वर्णन करते है, और बार-बार यह स्मरण दिलाते चलते हैं कि 'दशरथ'अजिर बिहारी राम' परब्रह्म के अवतार हैं जिन्हें संपूर्ण विश्व पूजता है । इसी दृष्टि से तुलसी ने राम के अलौकिक कृत्यों का वर्णन करते हुए उनके शील और शक्ति का मनोहारी निरूपण किया है ।

4.23. राम के पुरूषोत्तम रूप का वर्णन

राम के व्यक्तित्व में अनन्त सौंदर्य, अनन्त शक्ति एवं अनन्त शील की प्रतिष्ठा करके तुलसी ने पूर्ण पुरूषोत्तम के स्वरूप का उद्‌घाटन किया है जिसके दर्शन से मनुष्यता को पहुँचा हुआ हृदय अवश्य की द्रवीभूत हो उठता है -

सुनि सीतापति सील सुभाउ ।
मोद न मन तन पुलक नयन सो नर खेहर खाउ ।

ऐसे राम की प्रतिष्ठा द्वारा उन्हें अपने उद्धार का पूरा विश्वास हो जाता है ।

4.24. निश्छल प्रेम की याचना

निर्मल-निश्छल प्रेम की याचना द्वारा तुलसी अपनी भक्ति-पद्धति के चरम फल की घोषणा करते हैं -

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिम दाम
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम ।

4.25. तुलसी अपने भगवान को बाहर जगत् में देखते थे

भारतीय भक्ति-पद्धति के अन्तर्गत अखिल विश्व स्थिति में ब्रह्म की व्यक्त प्रवृत्ति के दर्शन की सरस अनुभूति प्राप्त करने का

विधान है । तुलसी ऐसे ही भक्त थे । वह संपूर्ण जगत् को 'सियाराममय' देखते हैं । पूरे संसार का वे आदर करते थे -

सियाराममय सब जग जानी
करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी ।

तुलसी ने जगत के बीच अपनी प्रत्यक्ष कला का प्रकाश करते हुए उपास्य की आराधना की, अपने हृदय के कोने में बिठाकर नहीं । तुलसी का वन के बीच राम का दर्शन करना प्रसिद्ध है, हृदय के भीतर नहीं । रहस्यमयी बातें करना अथवा हृदय के किसी कोने में छिपे हुए भगवान की चर्चा करना उन्हें अरूचिकर था । भगवान को इस दृश्यमान जगत् से पृथक करके देखना उनके विचार से सच्ची भावना था -

गोरख जगायो जोग, भगति भगायो भोग,
निगम वियोग तें, सो केलि ही छरो सो है ।

उनके अनुसार बाहर दिखाई देने वाला ईश्वर हमारे काम का हो सकता है -

अंत जीपिहु तें बड़ बाधर जामी हैं राम जो नाम लिए तें ।
पैज परे प्रहलादहुं को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिए तें ।

4.26. तुलसी की भक्ति-पद्धति का आधार सेवा-भाव है

तुलसी के मतानुसार भगवान को बाहर व्यक्त जगत में ही देखा जा सकता है । भगवान को व्यक्त जगत् में देखने का अर्थ है व्यक्त जगत के प्रति आत्मीयता का भाव रखता । इसी कारण चित्रकूट के घाट पर चंदन लगानेवाले प्रत्येक संत को तुलसी रघुवीर रूप में देखा करते थे । उनके लिए आत्म और अनात्म ''मैं और मैं नहीं' जैसी भेदपूर्ण स्थिति सर्वथा समाप्त हो चुकी थी । वह आत्म कल्याण और लोक कल्याण को दो वस्तुएँ नहीं समझते थे । इसी कारण भारतीय भक्ति की परंपरानुसार तुलसी की भक्ति-पद्धति में व्यक्ति-कल्याण और लोक-कल्याण दोनों के ऊपर समान बल दिया जाता है । तुलसी द्वारा प्रतिष्ठित प्रत्येक राम-भक्त राम की अनन्त भक्ति की याचना करता, भुक्ति अथवा मुक्ति की नहीं ।

तुलसी की राम-भक्ति का मुख्य लक्षण है चराचर जगत् के प्रति सेवा भाव । यथा -

सो अनन्त गति जाके मति न टरइ हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत ।

सेवा भाव द्वारा प्रेरित आचरण ही मनुष्य को मनुष्य बना सकता है । यही बात गोस्वामीजी ने बार-बार, तरह-तरह से कही है । वे सेवा-भाव के प्रतिपादन की दृष्टि से राम के चरण-रज की महिमा का बार-बार बरवान करते हैं । उनके चरण-रज-स्पर्श से पाषाणी अहिल्या 'तपपुंजमयी' नारी बन जाती है ।भरत श्रीराम की चरण-पादुका प्राप्त करके धन्य बन जाते हैं तथा विभीषण उनके चरणों के दर्शन कर कहता है -

उर कछुक प्रथम वासना रही,
प्रभु पद प्रीति सरित सो बही ।

केवट को उनकी चरण रज का महत्व विदित था । उसके हठ के आगे श्रीराम झुक जाते हैं और उसे पाँव धोने की अनुमति दे देते हैं -

बिहँसी कृपाल बोले रघुराई ।
सोई करि जोहि तेरी नाव न जाई ।

ऐसा लगता है मानों केवट के रूप में स्वयं तुलसी चरण रज के महत्त्व की घोषणा इन शब्दों के द्वारा कर देते हैं कि-

चरण कमल रज कहँ सब कहही ।
मानुष करन मूरि कछु अहही ।

4.27. लोक-रक्षा और लोकरंजन तुलसी की भक्ति-पद्धति के अभिन्न अंग हैं

लोक-रक्षा और लोकरंजन की वृत्तियाँ तुलसी की सेवा-भाव पर आधारित भक्ति पद्धति के अंग हैं । मानव तभी सच्चे अर्थों में मानव कहलाने का अधिकारी बनता है जब वह लोक-रक्षा तथा लोकरंजन के लिए अपने जीवन को उत्सर्ग करता है । इस

परमावस्था को प्राप्त करने के लिए मानव सेवा-वृत्ति को अपनाता है ।

4.28. गोस्वामीजी युग-द्रष्टा होने के साथ-साथ युग स्त्रष्टा भक्त थे

गोस्वामीजी के आविर्भाव के समय विदेशी शासन के कारण हिन्दू समाज निराश एवं निष्क्रिय हो गया था । विभिन्न संप्रदायों की खींचतान के कारण आर्य-धर्म का व्यापक स्वरूप आँखों से ओझल हो रहा था । तुलसी ने अपनी श्रुतिसम्मत एवं विरति विवेक से युक्त हरिभक्ति की प्रतिष्ठा करके भारतीय समाज को विश्रृंखलित होने से बचाया । जो लोक प्राचीन शास्त्र-सम्मत, लोक-वेद-विहित भक्ति-पद्धति का त्याग करके विभिन्न पंथों में भटक रहे थे, उन्हें सही रास्ता दिखाया । लोक-मर्यादा का उल्लंघन, समाज की व्यवस्था का तिरस्कार, भक्ति और साधुता की दंभपूर्ण चर्चा, अज्ञान छिपाने के लिए वेद शास्त्र की निंदा आदि ऐसी बातें थीं, जिनसे गोस्वामीजी की अंतरात्मा बहुत व्यथित हुई । उन्होंने इन सबसे उद्धार करने के लिए मर्यादा पुरूषोत्तम श्री रघुनाथजी के चरित्र का अवलंब ग्रहण किया और एक सशक्त रूप में राम-कथा का प्रणयन एवं राम-भक्ति का प्रचार किया ।

4.29. तुलसी की भक्ति-पद्धति में समाहित लोक-कल्याण एवं सामाजिक संगठन के आधार

गोस्वामीजी राम और रावण का ऐतिहासिक कथानक लेकर काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए । रावण एक प्रकार से हिन्दू समाज का शत्रु है और राम समाज कल्याण में प्रयत्नशील वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । रावण समस्त साधन संपन्न महाशक्तिशाली राजा है और राम असहाय निर्वासित व्यक्ति हैं । वह अपने बुद्धि-कौशल एवं पुरूषार्थ के बल पर वनवासी असभ्य व्यक्तियों एवं वन-चारी वानर-भालुओं को संगठित करके अपने शत्रु पर विजय पाता है । रावण-विजय का रहस्य राम का आत्म-विश्वास एवं आत्म विजय,

इन दो शब्दों में निहित है । 'मानस' में वर्णित लोक-कल्याण एवं सामाजिक संगठन के ये ही दो मूल मंत्र हैं ।

निर्वासित राम के ऊपर वन में विविध प्रकार की विपत्तियाँ पड़ती हैं, परंतु वह एक पल के लिए भी विचलित नहीं होते हैं । न वह धैर्य खोते हैं और न ही सहायता के लिए अयोध्या को किसी प्रकार का संदेश ही भेजते हैं । यहाँ तक कि स्वर्ग जाते हुए गीधराज जटायु को इस संबंध में सावधान करते हुए यह कह देते हैं कि वह स्वर्गवासी दशरथजी को सीताहरण का समाचार न सुनाए, यदि मुझमें पुरूषार्थ होगा, तो मैं रावण को इसका दण्ड दूँगा और वह स्वयं रोता हुआ उनके पास पहुँचेगा कि पत्नी-हरण के अपराध में आपके पुत्र श्रीराम ने मेरे वंश का नाश कर दिया -

सीता-हरन पिता सन कहेए तात जनि जाइ ।
जो मैं राम तो कुल सहित कहिय दसानन आइ ।

भौतिक उन्नति के प्रति आसक्त समाज की दृष्टि सदैव स्थूल और प्रयोजन कर केंद्रित रहती है । रावण उसका प्रतीक था, हमारा प्रस्तुत समाज उसका प्रतिरूप एवं ज्वलन्त उदाहरण है । भौतिकवादी चिन्तन-पद्धति व्यक्ति की उपेक्षा करती है । प्रत्येक व्यक्ति अपने शारीरिक सुखों एवं भौतिक साधनों की उपलब्धि पर बल देता है । त्याग, तपस्या, सदाचार आदि की बातें पीछे पड़ जाती है । किंतु भारतीय चिंतन पद्धति व्यक्ति के विकास पर बल देती है । मान्यता यह है कि व्यक्ति रूपी इकाईयों के सुधार के द्वारा समाज का सुधार स्वतः हो जाएगा । गोस्वामीजी को यही चिंतन पद्धति मान्य थी और उन्होंने इसी का प्रतिपादन किया है । वे व्यक्ति के सुधार में समाज का सुधार देखते थे । भगवान श्री रामजी के द्वारा उन्होंने विभीषण के सम्मुख 'धर्मरथ' का निरूपण कराते हुए लोक-कल्याण के इसी रहस्य का उद्‌घाटन कराया है ।

मानस में पाँच स्थलों पर श्रीरामजी जीवन और जगत् का विवेचन करते हुए दिखाई देते हैं । इन्हें पाँच 'राम-गीताएँ' कहा जाता है । राम-रावण के भयंकर युद्ध को देखकर विभीषण के मन

में संदेह उत्पन्न होने लगता है कि विरथ राम रथी रावण पर किस प्रकार विजय प्राप्त कर सकेंगे । उसके संदेह का निवारण करते हुए श्रीराम धर्म-रथ का निरूपण करते हैं और बताते हैं कि जो धर्माचरण द्वारा अपने मन पर विजय प्राप्त करता है, वही वास्तव में सच्चे विजय का अधिकारी बनता है, संसार को जीतने के लिए मन को जीतना चाहिए । रथ के विभिन्न अवयवों का रूपकात्मक वर्णन करते हुए वह निष्कर्षतः कहते हैं कि

सखा धर्ममय अस रथ जाके । जीतन कहुँ न कतहूँ रिपू ताके ।
महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो वीर ।
जाके अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर ।

संक्षेप में - समाज के संगठन के लिए हमें व्यक्ति का संगठन करना चाहिए । परमार्थिक दृष्टि से तुलसी ने समस्त संसार को 'सीयाराम मय' माना परंतु व्यवहार के क्षेत्र में धर्म के विरोधी 'रावण' को वह 'शठ' कहते हुए तनिक भी संकुचित नहीं हुए ।

4.30. नवधा भक्ति

भक्ति के जितने भी वर्गीकरण शास्त्रों मे किए गए है उनमें भागवत की नवधाभक्ति सबसे अधिक लोकप्रिय है जो इस प्रकार निरूपित की गयी है -

श्रवण कीर्तन विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।

तुलसी ने इस नवधा भक्ति के विविध अंगों की विभिन्नस्थलों पर प्रसंगानुसार चर्चा की है -

4.30.1. श्रवण

सगुण अथवा निर्गुण भगवान् के प्रतिपादक शब्द का कान द्वारा ग्रहण और बोध 'श्रवण' कहलाता है । तुलसी का कथन है कि जो कान भगवान का गुणगान नहीं सुनते वे साँपों के बिल के समान हैं -

जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना ।
श्रवनरंध्र अहिभवन समाना ।।

4.30.2. कीर्तन

सगुण अथवा निर्गुण भगवान के बोधक शब्द का उच्चारण कीर्तन है । सगुण-भक्त के लिए भगवान के नाम, लीला, गुण, धाम आदि का उच्चारण कीर्तन है । जो राम का गुनगान नहीं करता उसकी जिह्वा मेंढक की जिह्वा के समान है -

जो नहि करै राम गुन गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ।।

4.30.3. स्मरण

भगवान् के नाम, रूप, गुण आदि की स्मृति 'स्मरण' है । भवसागर पार करने के लिए राम का स्मरणमात्र पर्याप्त है -

सुमिरत श्री रघुबीर की बाहैं ।
होत सुगम भव उदधि अगम अति ।
कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहैं ।।

4.30.4. पादसेवन

भगवान और उनके भक्तों की सेवा, मन्दिर-गमन, तीर्थ-यात्रा आदि पादसेवन है । जैसे -

कर नित करहिं राम पद पूजा ।
राम भरोस हृदय नहि दूजा ।।
चरन राम तीरथ चलि जाहीं ।
राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ।।

4.30.5. अर्चन

भगवान की विधिवत् पूजा 'अर्चन' है । तुलसीदास की कृतियों में भगवान या उनकी मूर्ति की पूजा के अनेक स्थल हैं । स्वयं राम ने शिव की विधिवत् पूजन किया है -

पूजि पारथिव नायेउ माथा ।

और सीता ने भवानी की पूजा की है -

तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चलीं ।

4.30.6. वन्दन

'वन्दन' का अर्थ प्रणाम, नमस्कार या स्तुति है । 'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका' आदि में बहुसंख्यक बन्दनाओं एवं स्तुतियों की निबंधता करके तुलसी ने भक्ति की इस विधा को गौरव दिया है ।

4.30.7. दास्य

भगवान को स्वामी और स्वयं को दास समझना 'दास्य-भाव' है । तुलसी के आदर्श भक्त इसी मनःस्थिति की सदैव कामना करते हैं -

अस अभिमान जाइ जनि भोरें । मैं सेवक रघुपति पति मोरे ।।

4.30.8. सख्य

इस भक्ति में आराध्य के प्रति बन्धुभाव का प्राधान्य रहता है । यह भावना विश्वास की परिणती है । तुलसीदासजी 'दास्य-भाव' को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, अतः उनके साहित्य में सख्य-भाव का निरूपण नगण्य-सा है । राम के सखाओं की भक्ति भी दास्य-विशिष्ट है । 'विनयपत्रिका' के जिन पदों मे उन्होंने राम को खरी-खोटी सुनाई हैं वे विश्वास-सख्य' के उदाहरण माने जा सकते हैं । उनमें भक्त ने अपने भक्ति-भाव का सखा की भाँति अनौपचारिक ढंग से निवेदन किया है ।

4.30.9. आत्म निवेदन

भक्त के द्वारा भगवान के प्रति सर्वतोभावेन् आत्म समर्पण ही 'आत्मनिवेदन' है । भगवान की शरण में पहुँचकर भक्त चिंतामुक्त हो जाता है । इस शरणागति की छः विधाएँ बतलाई गयी हैं ।

(1) भगवान् के अनुकूल रहने का संकल्प । यथा -

तुम्हहि नीक लागे रघुराई । सो मोहि देहु दास सुखदाई ।।

(2) उनकी प्रतिकुलता का त्याग - यथा

जाके प्रिय न राम बैदेही ।
सो छाँड़िये कोटि बैरी सम जद्यपि परम स[illegible] ।।

(3) रक्षक भगवान में विश्वास - यथा -

सुमिरत श्री रघुबीर की बाहैं ।
करि आई करि हैं करती हैं तुलसीदास दासनि पर छाहैं ।।

(4) रक्षक भगवान का वरण - यथा -

ताहि तें आयो सरन सबेरें ।
तुलसीदास यह बिपति बागुरौ तुम्हहि सों बनै निबेरें ।।

(5) आत्मनिक्षेप या आत्म-समर्पण - यथा -

तुलसीदास निज भवनद्वार प्रभु दीजै रहन परयो ।

(6) कार्पण्य अर्थात् अत्यंत दीनता - यथा -

तुम सम दीनबंधु न दीन कोउ मो सम सुनहु नृपति
रघुराई ।

दूसरे प्रकार की नवधा भक्ति 'अध्यात्मरामायण' में प्रतिपादित की गयी है । तदनुसार 'रामचरितमानस' के राम ने भी शबरी के प्रति नवधा-भक्ति का उपदेश किया है -

नवधा भगति कहीं तोहि पाहीं । सावधान सुनि धरू मन
माहीं ।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा
प्रसंगा ।।
गुरपद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान ।
चौथी भगति मम गुनगन करइ कपट तजि गान ।।
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा । पंचम भजनु सो बेद
प्रकासा ।।
छठ दम सील बिरति बहु कर्मा । निरत निरंतर सज्जन
धर्मा ।।
सातवें सम मोहि मय जग देखा । मो तें संत अधिक करि
लेखा ।।
आठवें जथा लाभ संतोषा । सपनेहु नहि देखइ पर दोषा ।।

नवम सरल सब सन छल हीना । मम भरोस हिय हरष नदीना ।।
नव महु एकौ जिन्ह कें होई । नारि पुरुष सचराचर कोई ।।
सोई अतिसय भामिनि प्रिय मोरें । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ।।

इस नवधा भक्ति में विधि-विधान की उपेक्षा की गयी है और भक्ति-संबंधी व्यापक मूलभूत सिद्धांतों पर ध्यान दिया गया है । सभी लोग इस भक्ति के अधिकारी हैं ।

4.31. भक्ति के साधन

भक्ति के सभी साधनों को तीन वर्गों में रखा जा समता है - कृपा-साधन, विहित साधन और अविहित साधन । तुलसी ने राम-भक्ति की प्राप्ति के लिए स्वयं राम, गुरू, संतों, देवों और द्विजों की कृपा की आवश्यकता पर बल दिया है -

सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई । रामकृपा काहूँ एक पाई ।।
द्विज देव गुरू हरि संत बिनु संसार पार न पाइये ।।

नवधा भक्ति के अंग ही विहित साधन हैं । वैराग्य, योग और ज्ञान भी इसी वर्ग में आते हैं । विहित मार्ग में धर्म से वैराग्य, वैराग्य से योग, योग से ज्ञान और ज्ञान से भक्ति की प्राप्ति होती है । तुलसीदास ने बताया है कि पुराण आदि में वर्णित राम-कथा के अनुशीलन से ज्ञानी और विरक्त जन राम-भक्ति प्राप्त करते हैं -

पावन पर्बत बेद पुराना । राम कथा रूचिराकर नाना ।।
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी । ज्ञान बिराग नयन उरगारी ।।
भाव सहित खोजी जो प्रानी । पाव भगति मति सब सुखखानी ।।

भगवान के साथ रागात्मक संबंधों की स्थापना अविहित साधन है । जो भगवान को ही अपना पिता, माता, बन्धु आदि समझने लगता है, वह उनका स्नेहपात्र हो जाता है । उन्होंने स्वयं कहा है -

जननी जनक बंधु सुत दारा । तनु धनु भवनु सुहृद परिवारा ।।
सबकै ममता ताग बटोरी । मम पद मनहि बाँध बरि डोरी ।।

4.32. निष्कर्ष

तुलसी की भक्ति व्यक्तिगत संकीर्णता की पिरिधि को त्याग कर लोक कल्याण की व्यापक भावना से ओत-प्रोत है । तुलसी की चातक भक्ति, प्रेम और श्रद्धा पूरित भक्ति, दास्य भक्ति, राम-नाम के प्रति निष्ठा, शरणागत भक्ति, नवधा भक्ति आदि माया मोह से ग्रसित मानव को राम के दरबार में पहुँचा सकता है । तुलसी ने इस भक्ति-साधना के अनेक सोपान माने हैं यथा कथा-गान, सत्संग, गुरू-सेवा, गुणगान, मंत्र-जाप, दृढ़ विश्वास, भजन शील, विरक्ति, सज्जन धर्म का पालन, संसार भर के पदार्थों में ही भगवान को देखना, प्रत्येक स्थिति में संतोष, पर दोष स्वप्न में भी नहीं देखना, भगवत विश्वास, निष्कपटता, अनासक्ति-भाव आदि । उत्तरकाण्ड में काकभुशुण्डि प्रसंग में पाँच सिद्धांतों का उल्लेख है - श्रद्धा, ज्ञान, मति, इन्द्रिय संयम, निष्ठा जिसके द्वारा भक्ति के मार्ग में प्रविष्टि पाई जा सकती है ।

4.33. सारांश

तुलसीदास के इष्टदेव परब्रह्म विष्णु रूप के अवतार हैं । वे अनन्त रूपराशि एवं गुण की खानी हैं । तुलसी ने भगवान की भक्त वत्सलता का वर्णन जी खोलकर किया । तुलसीदास प्रभु से विशुद्ध प्रेम की याचना करते हैं । साथ ही अपने इष्टदेव के शील शक्ति के प्रति अधिक आकृष्ट हुए हैं । तुलसीदास की भक्ति दास्य भक्ति है । तुलसी केवल भक्तजन के उद्धार की बात करते हैं । दैन्य एवं विनम्रता के भाव तुलसी में कूट-कूट कर भरे हैं । तुलसीदास की भक्ति श्रुति सम्मत एवं विरति विवेक से युक्त है । उनकी भक्ति अनन्य, निष्काम एवं प्रभु की कृपा पर अवलम्बित है । तुलसी की भक्ति भावना के साथ लोक धर्म का पूर्ण समन्वय मिलता है । उन्होंने कर्म, ज्ञान एवं उपासना का संयोग कर भक्ति का पंथ खड़ा

किया । उन्होंने जिस वैराग्य की चर्चा की वह मानव को कर्त्तव्यों से विमुख करने के लिए नहीं बल्कि परहित की तरफ उन्मुख करने के लिए है । भक्ति रस का पूर्ण परिपाक जैसे तुलसी में मिलता है वैसा अन्यत्र नहीं । भक्ति के द्वारा ही अन्तःकरण की शुद्धि संभव है । भक्ति के बिना सब कुछ निस्सार है, नीरस है । आचरण की दृढ़ता भक्ति के द्वारा ही आती है । तुलसीदास ने भक्ति को साधन और साध्य दोनों रूपों में अपनाया है । भक्ति के अभाव में व्यक्ति के लोक परलोक दोनों ही विनष्ट हो जाते हैं । राम दीन-बन्धु एवं शरणागत वत्सल हैं । वाल्मीकि, अजामिल, गीध, शबरी, विभीषण, गुह, अहिल्या आदि के उद्धार की ओर संकेत करके वे बार-बार राम की शरणागत-वत्सलता का परिचय देते हैं । 'ऐसो को उदार जग माहीं बिनु कारण जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाही । गोस्वामीजी 'स्वान्तः सुखाय' काव्यप्रणयन में प्रवृत्त हुए थे और काव्य के माध्यम से राम-गुण-गान करके उन्हें 'आत्म सुख' की प्राप्ति हुई । उन्होंने लिखा 'रघुपति कृपा जथामति गावा । मैंयह पावन चरित सुहावा ।' गोस्वामीजी ने प्रत्येक ग्रन्थ की रचना राम के नाम पर लिखी है और प्रत्येक की फलश्रुति स्वरूप राम के चरणाविंद की भक्ति की याचना की है । 'माँगत तुलसीदास कर जोरे, बसहुँ राम सिय मानस मोरे । इन्होंने राम भक्ति की प्राप्ति की याचना हेतु अनेकानेक देवी देवताओं की आराधना की । 'देहु काम रिपु राम चरन रति, तुलसीदास कहै कृपा निधान ।' रामचरितमानस का प्रत्येक पात्र 'भक्ति' की याचना करता है । कोई भी ऐसा पात्र नहीं है जिसने मुक्ति की आकांक्षा प्रकट की हो ।

आलंबन में अनन्त सौंदर्य, शक्ति एवं शील की प्रतिष्ठापना, दैन्य, पूर्ण समर्पण, अनन्य प्रेम, निष्कामना, धर्म, सदाचरण के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति तुलसी की भक्ति के आधार हैं । धर्म या सदाचरण के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति, भक्ति की प्राप्ति प्रभु-कृपा पर अवलंबित है । तुलसी की उपासना पद्धति तथा भक्ति भावना के अंतर्गत, निर्गुण, सगुण, राम-नाम की महिमा, श्री राम विष्णु के

अवतार के रूप में, श्रद्धा, बुद्धि से समन्वित भक्ति के उन्नायक, कामना का वर्जन, सतसंग, राम के अलौकिक कृत्यों का वर्णन, राम के पुरूषोत्तम रूप का वर्णन निश्छल प्रेम की याचना आदि आते हैं । तुलसी अपने भगवान को जगत् में व्याप्त देखते हैं । तुलसी की भक्ति पद्धति का आधार सेवा-भाव है । लोक कल्याण और व्यक्ति कल्याण, लोक रक्षा और लोकरंजन तुलसी की भक्ति भावना के अभिन्न अंग हैं । तुलसी की भक्ति पद्धति लोक कल्याण की भावनाओं से मण्डित है । उनकी राम भक्ति जगत् का हित साधन करने वाले धर्म का प्रतिपादन करती है । उन्होंने विरति-विवेक युक्त हरि भक्ति के साथ लोक कल्याण का सम्मिश्रण कर एक ऐसे मार्ग का निर्माण किया जिसे 'राजडगर' कहते हैं जिस पर चलकर व्यक्ति का विकास और समाज का कल्याण दोनों हो सकता है । थोड़े शब्दों में गोस्वामी जी युग-द्रष्टा होने के साथ-साथ युग स्रष्टा भक्त थे ।

4.34. सम्भाव्य प्रश्न

1. तुलसी की भक्ति भावना पर एक लेख लिखिए ।
2. भक्ति-रस का पूर्ण-परिपाक जैसा तुलसीदासजी में देखा जाता है वैसा अन्यत्र नहीं । आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इस कथन को स्पष्ट करते हुए गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति-भावना का विश्लेषण प्रस्तुत कीजिए ।
3. तुलसी की भक्ति-पद्धति में लोक-कल्याण और सामाजिक संगठन के तत्वों का विश्लेषण कीजिए ।
4. तुलसी की नवधा भक्ति की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए ।

NOTES

NOTES

Karnataka State Open University

Mukthagangothri, Mysore - 570 006

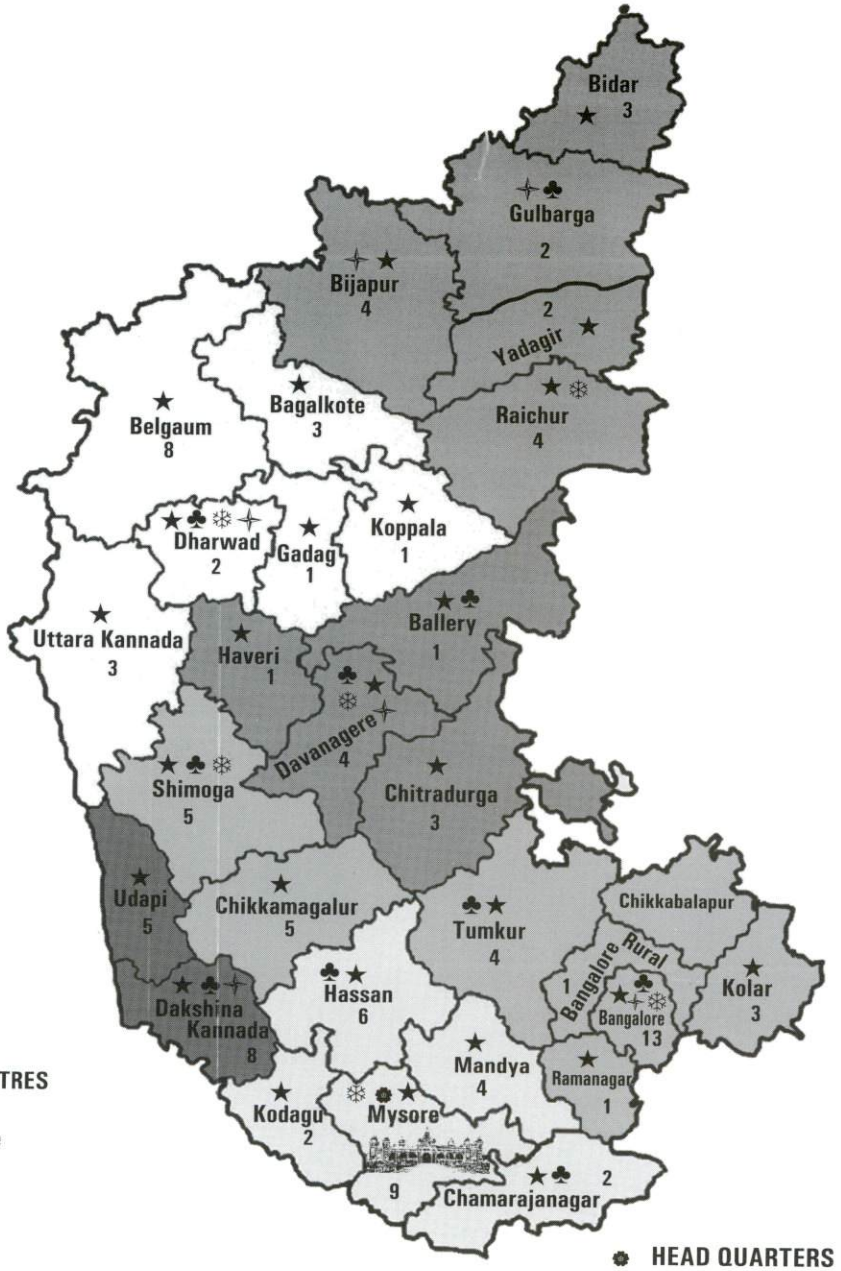

♣ **REGIONAL CENTRES**

Bangalore
Davanagere
Gulbarga
Dharwad
Shimoga
Mangalore
Tumkur
Hassan
Chamarajanagar
Bellary

HEAD QUARTERS
Total Study Centres : 111
Regional Centres : 10
B.Ed Study Centres : 10
M.Ed Study Centres : 08

ಆದೇಶ ಸಂಖ್ಯೆ : ಕ.ರಾ.ಮು.ವಿ./ಅ.ಸಾ.ವಿ./4-061/2013-2014 ದಿನಾಂಕ : 23.12.2013
ಒಳಪುಟ :60 GSM ಮ್ಯಾಪ್ಲಿತೊ ಕಾಗದ ಮತ್ತು ರಕ್ಷಾಪುಟ :170 GSM ಮ್ಯಾಟ್ ಆರ್ಟ್ ಕಾರ್ಡ್
ಮುದ್ರಕರು :ವಿನಾಯಕ ಆಫ್‌ಸೆಟ್ ಪ್ರಿಂಟರ್ಸ್, ಬೆಂಗಳೂರು–560 070 ಪ್ರತಿಗಳು :1600

Multimedia learning material
Self-instructional print material
Programme guide
Course materials
Assignments
Supplementory material
communication etc.
Project
Electronic media
learning component
*audio & video cassettes at study centres
Broadcasts-radio, television &
teleconferencing
*students affairs cell
Regional Director & academic staff
Coordinator & counsellors at study centres
Optional
Obligatory
Laboratory work/practicals
Extended contact programmes
Academic and other support
Tutor mark assignments
*Computer marked assignments
*Examination conducted 2 times in a year
Continuous evaluation
Terminal examination &
project evaluation
Project
Examination results
Evaluation - methods and modes
Monitoring of assignment
Report from study centres
Special Programme evaluation
Questionnaires
Feedback from counsellors
Feedback from public
Unsystematic feedback
Systematic feedback
Feedback : improvement, revision and
launching of new programmes
STUDENT
INSTRUCTIONAL SYSTEM